

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186402

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H544.92
B85 ch

Accession No. H 3461

Author क्रिष्ण, अम. सी. तथा वेरेट, एफ. सी.

Title क्रोमैटोग्राफी 1962.

This book should be returned on or before the date last marked below.

क्रोमैटोग्राफी

क्रोमैटोग्राफी

[विश्लेषण की नवीन पद्धति]

लेखक

आर० सी० ब्रिम्ले

तथा

एफ० सी० बैरेट

अनुवादक

डा० हरिभगवान्

हिन्दी-समिति

सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश

प्रथम संस्करण, १९६२

Hindi-Translation of "Practical Chromatography"

by

R. C. Brimley and F. C. Barrett

Chapman & Hall Ltd., London

Checked 1969

मूल्य ५.५० रु०

मुद्रक

सम्मेलन मुद्रणालय, प्रयाग

प्रकाशकीय

पिछले कुछ वर्षों से क्रोमेटोग्राफी, विश्लेषण एवं उद्योग से सम्बन्धित रसायनज्ञ के लिए तथा नीव-सम्बन्धी वैज्ञानिक क्षेत्रों में शोधकर्ता के लिए, अधिकाधिक महत्त्वपूर्ण बनती जा रही है। प्रतिदिन इस नवीन विश्लेषणविधि का नयी समस्याओं के सुलझाने में उपयोग हो रहा है। इससे उन प्रश्नों के संबंध में अन्वेषण करने में भी सहायता मिली है जो कुछ वर्ष पहले तक दुस्साध्य समझे जाते थे।

आधुनिक एवं भावी विज्ञान के विकास में इस नवीन विधि का विशेष महत्त्व है, इसी से हिन्दी समिति ने श्री ब्रिमले और श्री बैरेट द्वारा लिखित इस पुस्तक का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करने का निश्चय किया। अनुवादक डाक्टर हरि-भगवान् ने यथासम्भव सरल भाषा का प्रयोग करते हुए इस बात की चेष्टा की है कि विज्ञान में रुचि रखनेवाले हिन्दी के पाठकों को थोड़े में इसकी जानकारी हो जाय और वे इसका व्यावहारिक पक्ष अधिक आसानी से समझ सकें। पुस्तक में जो ३४ चित्र दिये गये हैं, उनसे भी इस लक्ष्य-सिद्धि में सहायता मिलेगी, ऐसी आशा है।

लीलाधर शर्मा 'पर्वतीय'

सचिव, हिन्दी समिति

विषय-सूची

अध्याय	पृष्ठ
ई० सी० वाटे-स्मिथ द्वारा लिखित प्राक्कथन	-९-
प्रस्तावना	-११-
अनुवादक का निवेदन	-१३-
१. भूमिका	१
विभाजन क्रोमैटोग्राफी । कागज क्रोमैटोग्राफी । विभाजन क्रोमैटोग्राफी को प्रभावित करने वाली दशाएँ । अन्य क्रोमैटोग्राफीय विधियाँ । अधिशोषण क्रोमैटोग्राफी । अग्रभागीय विश्लेषण । विस्थापन क्रोमैटोग्राफी । क्रोमैटोग्राफीय विधियों के सिद्धांत ।	
२. कागज-क्रोमैटोग्राफी	२१
उपकरण में परिवर्तन । कागज । विलायक । परख-द्रव लगाने की विधि । क्रोमैटोग्राम को सुखाना । फव्वारे । कागज क्रोमैटोग्राफी द्वारा पृथक् हो सकनेवाले यौगिकों के वर्ग ।	
३. कागज-क्रोमैटोग्राफी के उपयोग	३८
धब्बे के क्षेत्रफल का माप । रंग-घनत्व के माप से परिमाणन । कर्तित धब्बे का सूक्ष्म-रासायनिक परिमाणन । निष्कासित पदार्थों का सूक्ष्म-रासायनिक परिमाणन । सरल उपयोग । अन्य परख-विधियों के साथ क्रोमैटोग्राफी का उपयोग । विशेष निरूपित करने वाली युक्तियों के उपयोग । क्रमिक क्रोमैटोग्राम । सांघ्र मान और रासायनिक रचना ।	
४. स्तम्भ-क्रोमैटोग्राफी-अधिशोषण	५०
पूर्वकालिक कार्य । स्तम्भ-धारक । स्तम्भों का भरना । परख-द्रव का लगाना । क्रोमैटोग्राम का प्रस्फुटन । अधिशोषण क्रोमैटो-	

ग्राफी द्वारा पृथक् हो सकनेवाले पदार्थ। विलायक। अधिशोषक। कुछ विशेष अधिशोषक। टिजेलियस का कार्य और उसके बाद के विकास। अग्रभागीय विश्लेषण। अधिशोषण द्वारा विस्थापन-क्रोमैटोग्राफी। गैसों और वाष्पों की अधिशोषण क्रोमैटोग्राफी।

५. स्तम्भ-क्रोमैटोग्राफी-विभाजन

७३

मार्टिन एवं सिन्ज के मौलिक प्रयोग। सिलिका-श्लिषि की तैयारी। विभाजन-क्रोमैटोग्रामी का सिद्धांत। सिलिका-श्लिषि को तैयार करने में कठिनाई। सहायक द्रव्य रूप में जलज उद्भिज्ज युक्त मिट्टी। विभाजन-क्रोमैटोग्राफी के उपयोग। परिवर्धित विभाजन-क्रोमैटोग्राफी। वसीय अम्लों का पृथक्करण। गैस-द्रव विभाजन क्रोमैटोग्राफी। अमीनो-अम्लों की विभाजन-क्रोमैटोग्राफी। प्रवाहविरोधी वितरण।

६. स्तम्भ-क्रोमैटोग्राफी-आयन-विनिमय

१००

स्तम्भों की तैयारी। अनेक स्तम्भ। नमूने की मात्रा। विस्थापी विलयन का सांद्रण। विलयनों का साफ़ करना। अनेक स्तम्भों की कार्यवाही। अंशों का लक्षण-निर्धारण। विलयशीलों के विस्थापन का क्रम। आयन-विनिमय रेजिनो को काम में लाकर निष्कासन विधियाँ। आयन-विनिमय रेजिनो के अधिशोषक गुण-धर्म।

७. सहायक उपकरण

१३१

बूंदों का गिनना। भार के अनुसार अंश-एकत्रण। समय पर आधारित अंश-एकत्रक। अन्य सहायक उपकरण। वैद्युत चालकता और pH की माप। लवणरहित करने वाला उपकरण।

परिशिष्ट (१) क

१४९

पठनीय-सामग्री-उल्लेख

१६१

अनुक्रमणिका

१६७

प्राक्कथन

यदि आधुनिक रसायन-शास्त्र के अनेक क्षेत्रों पर विहंगम दृष्टि डाली जाय तो उन सब में क्रोमैटोग्राफी के नवीन ज्ञान की धारा बहती जान पड़ती है। आजकल क्रोमैटोग्राफीय विधि का इतना अधिक उपयोग होने लगा है कि वह अब सर्वसाधारण विधि समझी जाने लगी है। किन्तु इस विधि को और इस नवीन विज्ञान को अभी तक न तो स्कूलों की पाठ्य-पुस्तकों में स्थान मिला है और न ही कोई सरल छोटी पुस्तक अध्यापकों तथा इस विधि को उपयोग में लाने वालों को प्राप्य है। इस पुस्तक के लेखक इस प्रकार की सरल छोटी पुस्तक के लिखने के अधिकारी हैं, क्योंकि वे दूसरे विश्व-युद्ध के बाद से क्रोमैटोग्राफी की नवीन विधियों के विकास एवं भोजन संबंधी वैज्ञानिक अन्वेषणों में उनके विविध व्यावहारिक उपयोग के उत्थान में लगे हुए हैं। श्री एफ० सी० बैरेट ने श्री एफ० ए० आइशरउड के साथ पौधों के सार में कार्बनिक अम्लों का अध्ययन किया। इन अन्वेषकों ने श्री एम० ए० जर्मिन के साथ पौधों की कोशिका-भित्ति की रचना का अध्ययन किया; श्री बैरेट ने श्री सी० एस० हानेस और श्री एफ० ए० आइशरउड के साथ कागज-क्रोमैटोग्राफी की विधि का फ़ास्फ़ेट एस्टर के अध्ययन में भी उपयोग किया। श्री आर० सी० ब्रिम्ले ने श्री एस० एम० पार्टिज और श्री आर० जी० वेस्टल तथा अन्य लोगों के साथ प्रोटीन के जल-विश्लेषित पदार्थों और मांस-पेशी, तथा चुकन्दर के रसों के परीक्षण में आयन-विनिमय क्रोमैटोग्राफी का उपयोग किया। इन विश्लेषणात्मक अन्वेषणों के अतिरिक्त उन्होंने लो टेम्परेचर स्टेशन में कार्य करने वाले अन्य वैज्ञानिकों के साथ पौधों के ऊतक (टिशू) में फ़ीनोल-संबंधी पदार्थों और रंग-द्रव्यों (पिगमेंटों) के पृथक्करण तथा पहचान पर, वाष्पशील वसीय अम्लों और अमीनों के पृथक्करण पर, “ब्राउनिंग प्रतिक्रिया” से संबंधित रासायनिक पदार्थों के पृथक्करण पर और इसी प्रकार की अन्य क्रोमैटोग्राफीय समस्याओं पर कार्य किया है।

इस पुस्तक की प्रशंसा करने में मुझे प्रसन्नता होती है। जिस दक्षता से लेखकों

ने नवीन ज्ञान को सरल बनाया है और जिस लगन से उन्होंने यह कार्य पूरा किया है उसके लिए मैं उन्हें बधाई देता हूँ। पुस्तक इस योग्य है कि इसे अच्छी सफलता प्राप्त हो और इस के लिए मैं अपनी शुभ-कामनाएँ प्रकट करता हूँ।

२६ अगस्त, १९५२

ई० सी० बाटे-स्मिथ

प्रस्तावना

यह पुस्तक लिखने का कारण यह है कि हम लोगों का विश्वास था कि इस प्रकार की पुस्तक की विशेष रूप से आवश्यकता है। कागज़ क्रोमैटोग्राफी पर या पुरानी विधि अधिशोषण-क्रोमैटोग्राफी पर कई पुस्तकें हैं; किन्तु इस विषय की नवीन पुस्तक में विभाजन और आयन-विनिमय की क्रोमैटोग्राफीय विधि का भी उल्लेख होना आवश्यक है।

क्रोमैटोग्राफी पर कार्य करने वालों को आरंभ में व्यावहारिक ज्ञान की आवश्यकता होती है। प्रथम, उन्हें नवीन विधियों का विज्ञान (टेक्नीक) जानना चाहिए; द्वितीय, उन्हें यह जानना चाहिए कि इन विधियों का किन क्षेत्रों में उपयोग हो सकता है। यह पुस्तक लिखते समय इन दोनों बातों को सदैव ध्यान में रखा गया है। सैद्धान्तिक आलोचना तभी की गयी है जहाँ पर उसका सीधा व्यावहारिक उपयोग हो सकता है।

लेखक निम्नलिखित व्यक्तियों और कम्पनियों के, जिन्होंने सारणियों एवं चित्रों को इस पुस्तक में सम्मिलित करने की अनुमति दी है, बड़े आभारी हैं—
डा० ई० सी० बाटे-स्मिथ; डा० एफ० ब्राउन; डा० डी० कैवेलिनी; डा० डी० के० हेल; डा० एफ० ए० आइशरउड; परमुटिट कं० लिमिटेड के डा० टी० आर० ई० त्रेसमान; डा० एम० लेडेरर; प्रोफ़ेसर आर० पी० लिनस्टेड, एफ० आर० एस०; डा० ए० जे० पी० मार्टिन, एफ० आर० एस०; डा० एस० मूर; डा० एस० एम० पाट्रिज; डा० डी० एम० पी० फ़िलिप्स, मेसर्स एच० रीव ऐन्जिल एंड कंपनी लिमिटेड; दी शैडन साइंटिफ़िक कंपनी लिमिटेड; डा० जे० एम० शेवन; श्री ए० स्नो; श्री आर० जी० वेस्टल; और डा० आर० जे० विलियम्स।

हम लोग लो टेम्परेचर रिसर्च स्टेशन के शोध-कर्ताओं और विशेष रूप से उसके सुपरिन्टेन्डेन्ट डा० ई० सी० बाटे-स्मिथ की सहायता एवं सलाह के लिए बड़े कृतज्ञ हैं। यदि इस पुस्तक में कोई खूबी है तो उसका कारण इस प्रयोगशाला का वह वातावरण है जिसमें लेखकों ने कार्य किया है।

आर० सी० ब्रिम्ले
एफ० सी० बरेट

नोट —

बड़े दुःख के साथ मैं यह नोट लिख रहा हूँ। जब यह पुस्तक प्रेस में थी तो मेरे मित्र और सहकारी आर० सी० ब्रिम्ले का अचानक देहांत हो गया और वह अपने कार्य को प्रकाशित रूप में नहीं देख सके।

६ मार्च, १९५३

एफ़० सी० बैरेट

अनुवादक का निवेदन

लगभग तीन वर्ष पूर्व मैंने क्रोमैटोग्राफी से संबंधित विषय पर पी-एच० डी० उपाधि के लिए अंग्रेजी में मौलिक थीसिस लिखी थी। उस समय ऐसा विचार था कि शोध-संबंधी वैज्ञानिक साहित्य के लिए हिंदी पुस्तकों की रचना न तो संभव है और न वांछनीय, क्योंकि इस स्तर पर अधिकतर विचारधारा भी अंग्रेजी में ही होती है। इस पुस्तक का अनुवाद करते समय मेरे विचार में जो परिवर्तन हुआ है और जो निष्कर्ष मैंने निकाला है, उसे पाठकों के समक्ष रखना अपना कर्तव्य समझता हूँ।

हिंदी में उच्चतम वैज्ञानिक साहित्य की रचना संभव है, क्योंकि हिंदी का भारत में लगभग वही स्थान है जो यूरोप में अंग्रेजी का है। हिंदी में अनेक भाषाओं के शब्द हैं जिनसे किसी प्रकार की शब्दावली का सहज में निर्माण हो सकता है; संस्कृत व्याकरण की पृष्ठभूमि में यह कार्य काफ़ी सरल हो जाता है।

हिंदी में वैज्ञानिक शोध-साहित्य की शीघ्रातिशीघ्र रचना वांछनीय एवं आवश्यक है क्योंकि देश के भावी वैज्ञानिकों को इससे शोध-कार्य में सरलता होगी। अध्ययन करते समय यह आवश्यक नहीं कि सारे शब्दों का पूर्ण रूप से ज्ञान होने पर ही पाठक यह कहें कि वे उस रचना को अच्छी तरह समझ गये। कभी-कभी ५-१० प्रतिशत शब्द न मालूम होने पर भी पाठक यह कह बैठते हैं कि उन्होंने उस रचना को भली-भाँति समझ लिया। इस अस्पष्ट एवं अपूर्ण ज्ञान के कारण वैज्ञानिक शोध-कार्य में काफ़ी कठिनाई पड़ती है क्योंकि उपयुक्त प्रयोगों का आयोजन, चयन, सुधार ठीक से नहीं हो पाता। यह कठिनाई तभी हल हो सकती है जब मुख्य-मुख्य शोध-कार्य मातृभाषा अथवा राष्ट्रभाषा में ही पढ़े जायें क्योंकि अन्य भाषाओं की अपेक्षा उसमें अपरिचित शब्दों के होने की संभावना कम हो जाती है। प्रस्तुत पुस्तक के अनुवाद के उपरान्त मैं यह निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि इस विषय पर मौलिक थीसिस लिखने के बाद भी क्रोमैटोग्राफी से संबंधित मेरे विचारों में इस हिंदी अनुवाद से काफ़ी स्पष्टता आयी। यदि क्रोमैटोग्राफी पर

शोध-कार्य आरंभ करने के पहले मैंने यह अनुवाद किया होता, तो निःसंदेह मैं अपनी थीसिस की उपादेयता और अधिक बढ़ा सकता था।

इस व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर मैं यह कहने का अधिकारी हूँ कि यदि विश्वविद्यालयों में प्रत्येक विद्यार्थी वैज्ञानिक शोध-कार्य आरंभ करने के पहले अपने विषय से संबंधित उच्चतम वैज्ञानिक साहित्य का हिंदी में अनुवाद अथवा सर्जन करे तो उससे दो लाभ होंगे—उसके विचार सुस्पष्ट होकर उसके मौलिक शोध-कार्य को अधिक उपादेय बनायेंगे और हिंदी में उच्चतम वैज्ञानिक साहित्य का शीघ्र एवं प्रामाणिक सर्जन हो जायेगा।

हरिभगवान्

अध्याय १

भूमिका

क्रोमैटोग्राफी का पिछले दस वर्षों में इतना अधिक विस्तार हो गया है कि रसायन के विद्यार्थियों के लिए अब यह आवश्यक है कि वे यह जानें कि क्रोमैटोग्राफीय विधियों का किस प्रकार उपयोग किया जा सकता है। वस्तुतः क्रोमैटोग्राफी रासायनिक यौगिकों को पृथक् करने की एक नवीन विधि है, किन्तु यह प्राचीन विधियों से कुछ भिन्न है। प्राचीन विधियाँ यौगिकों के केवल दो भौतिक गुण-धर्मों पर निर्भर रहती थीं—विलेयता^१ और वाष्पशीलता।^२ विलेयता की विभिन्नता के आधार पर अवक्षेपण,^३ केलासन,^४ आदि, विधियों से यौगिकों को पृथक् किया जाता था और वाष्पशीलता के आधार पर आसवन,^५ शोषण,^६ आदि, विधियों से। क्रोमैटोग्राफीय विधियाँ यौगिकों के अन्य भौतिक गुण-धर्मों की विभिन्नता का यौगिकों के पृथक् करने में उपयोग करती हैं। इस प्रकार, इस नवीन दृष्टिकोण की महत्त्वपूर्ण उपादेयता स्पष्ट हो जाती है यद्यपि इस विधि के उपयोगों की अभी तक पूर्ण रूप से खोज नहीं हुई है। अब तक जिन विधियों का विकास किया गया है उनसे केवल सूक्ष्म अथवा अर्द्ध-सूक्ष्म-स्तर पर ही कार्य किया जाता है; तथापि इन विधियों का अनेक समस्याओं के सुलझाने में उपयोग किया जा चुका है—इससे बहुमूल्य धातुओं के विश्लेषण से लेकर विटामिनों की शुद्ध रूप में तैयारी तक की गयी है।

इस पुस्तक के लेखकों ने क्रोमैटोग्राफी की कई विधियों का साथ-साथ विवेचन किया है और उन पर व्यावहारिक दृष्टिकोण से प्रकाश डालने का प्रयास किया है।

1. Solubility

3. Precipitation

5. Distillation

2. Volatility

4. Crystallization

6. Desiccation

यह आशा की जाती है कि साधारण विद्यार्थी अथवा क्रोमैटोग्राफी क्षेत्र में नवीन शोधकर्ताओं को यौगिकों के पृथक् करने के पहले यौगिकों का पर्याप्त ज्ञान होगा और उसकी पृष्ठभूमि में ये लोग निश्चय करेंगे कि क्रोमैटोग्राफीय विधियों का कितना उपयोग हो सकता है।

यद्यपि ऐसा जान पड़ता है कि शोनबीन (१) ने १८६१ में सब से पहले छनने कागज के अधिशोषण का पदार्थों के पृथक् करने में उपयोग किया, तथापि पोलैंड निवासी वनस्पति-वैज्ञानिक स्वेट^१ को क्रोमैटोग्राफीय विधि के आविष्कार का श्रेय दिया जाता है। आपने १९०६ में इस विधि का प्रथम सफल उपयोग किया। १९३१ तक इस शोध-क्षेत्र में कोई प्रगति नहीं हुई, किन्तु इस वर्ष क्लून, विटरस्टाइन एवं लेडेरर (२) का इस ओर ध्यान आकर्षित हुआ। श्री एच० वाइल और टी० आई० विलियम्स (३) का कहना है कि डी० टी० डे महोदय ने १८९७ में चूर्णित चूने के पत्थर के स्तम्भ में पेट्रोलियम को ऊपर चढ़ा कर उसके कुछ प्रभाजन^२ प्राप्त किये। ये “स्तम्भ” विधियां हैं; कागज-क्रोमैटोग्राम के आविष्कार का श्रेय कान्सडेन गार्डन, मार्टिन एव सिन्ज को प्राप्त है।

दुर्भाग्यवश, “क्रोमैटोग्राफी” शब्द उपयुक्त नहीं है (‘क्रोम’ के अर्थ रंग और ‘ग्राफी’ के अर्थ चित्रण होते हैं)। यद्यपि स्वेट ने रंगीन यौगिकों को अलग किया था और उनके विभिन्न रंग स्तम्भ पर दिखाई देते थे, तथापि इस विधि का महत्त्व केवल रंगों के पृथक् करने में ही नहीं है। इस विधि में दो विलायक-प्रणालियों (साधारणतया द्रव) द्वारा विलयशीलों का “विभाजन”^३ होता है। एक विलायक-प्रणाली स्थिर रहती है और दूसरी उसकी अपेक्षा चलती रहती है। कदाचित् “गतिज-विभाजन”^४ क्रोमैटोग्राफी की अपेक्षा अच्छा शब्द है, पर क्रोमैटोग्राफी शब्द का इतना अधिक उपयोग होने लगा है कि इस को बदलना संभव नहीं है।

इस विषय के व्यावहारिक पार्श्वों पर ध्यान देने के पहले यह अच्छा होगा कि उन विधियों का कुछ वर्णन किया जाये जो “क्रोमैटोग्राफी” से संबंधित हैं।

1. Tswett
3. Partition

2. Fractionation
4. Kinetic Partition

विभाजन क्रोमैटोग्राफी

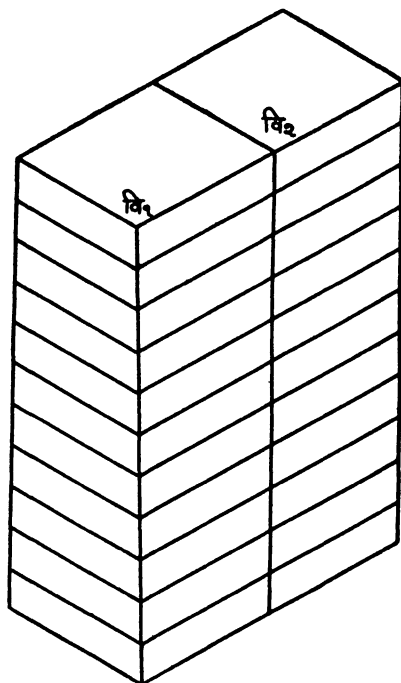
पाठक यह जानते होंगे कि जब विलयन को दूसरे अमिश्र्य^१ विलायक के साथ हिलाया जाता है तो उसमें जो अधिक विलेय होता है उसको कम विलेय पदार्थ से पृथक् किया जा सकता है। यदि इस विधि को दोहराया जाये तो अधिक विलेय पदार्थ और अधिक मात्रा में पृथक् हो सकता है। साधारणतया विलयशील^२ की पृथक् होने वाली मात्रा इस विधि को दोहराने की संख्या पर निर्भर होती है। विभाजन-क्रोमैटोग्राफी में इसी सिद्धान्त का उपयोग किया जाता है, किन्तु पृथक् करने की विधि को बार-बार करने के बजाय एक साथ ही करने की चेष्टा की जाती है। एक स्तम्भ में ठोस पदार्थ को भर दिया जाता है और उसमें एक द्रव स्थिर अवस्था में रहता है। मिश्रित^३ विलयशील स्तम्भ के ऊपर रख दिये जाते हैं और दूसरा द्रव स्तम्भ में बराबर बहने दिया जाता है। विभाजन-क्रोमैटोग्राफी का स्पष्ट मानसिक चित्र प्राप्त करने के लिए एक काल्पनिक प्रयोग सहायक होगा। कल्पना कीजिए कि दियासलाई की शकल के पात्र दो ढेरियों में इकट्ठा कर दिये गये हैं और ये ढेरियां पास-पास रखी हैं (देखिए चित्र १)। बायें हाथ की ढेरी में विलायक वि_१ भरा है; इस ढेरी को वि_१ कहा जायेगा। दूसरी ढेरी में विलायक वि_२ है और इसको वि_२ कहा जायेगा। कल्पना कीजिए कि ये दोनों विलायक आपस में मिश्र्य^४ नहीं हैं और इस प्रकार ये अमिश्र्य हैं। मान लीजिए कि (१) पात्रों का एक किनारा दूसरे पात्रों की ढेरी के दूसरे किनारे को छू रहा है और (२) दोनों विलायकों के विलयशील एक दूसरी ढेरी के एक पात्र से दूसरे पास वाले पात्र में जा सकते हैं, किन्तु एक ही ढेरी के एक पात्र से दूसरे पात्र में नहीं जा सकते।

अब एक नवीन पात्र में विलायक वि_१ लीजिए जिसमें दो विलयशील क और ख इकाई सांद्रण^५ में हैं। इस पात्र को वि_१ ढेरी के ऊपर रख दीजिए और पूरी वि_२ ढेरी को एक पात्र की ऊंचाई के बराबर ऊपर से नीचे खिसकाइए। इस प्रकार

1. Immiscible
3. Mixed
5. Concentration

2. Solute
4. Miscible

दोनों ढेरियों के ऊपर वाले पात्रों में विलयशील अपने विभाजन-गुणकों^१ के अनुसार पृथक् हो जायेंगे। यदि क का विभाजन-गुणक $\frac{1}{3}$ है और ख का $\frac{2}{3}$, तो ऊपर वाले पात्रों में क का सांद्रण $वि_1$ में $\frac{1}{3}$ और $वि_2$ में $\frac{2}{3}$ होगा। इसी प्रकार ख का सांद्रण $वि_1$ में $\frac{2}{3}$ और $वि_2$ में $\frac{1}{3}$ होगा। नीचे वाले पात्रों में केवल विलायक रहेगा। यह मान लिया गया है कि संतुलन बहुत जल्दी प्राप्त हो जाता है।



चित्र १—काल्पनिक प्रयोग—बियासलाई के समान पात्रों की ढेरी

अब दूसरे पात्र में शुद्ध विलायक $वि_1$ लीजिए और इसे $वि_2$ ढेरी पर रखिए। $वि_2$ ढेरी को दुबारा एक पात्र की ऊंचाई के बराबर नीचे खिसकाइये। अब दोनों ढेरियों के ऊपर वाले दोनों पात्रों में क का सांद्रण $\frac{1}{3}$ होगा। ख का सांद्रण ऊपर

वाले पहले वि_१ पात्र में $\frac{3}{4}$ और ऊपर वाले पहले वि_१ पात्र में $\frac{3}{4}$ होगा। इसी प्रकार दूसरे वि_१ पात्र में $\frac{3}{4}$ और दूसरे वि_२ पात्र में $\frac{3}{4}$ होगा।

	वि _१		वि _२	
	क	ख	क	ख
1	1	1	1	3
2	9	27	9	81
3	36	324	36	972
4	84	2268	84	6804
5	126	10206	126	30618
6	126	30618	126	91854
7	84	61236	84	183708
8	36	78732	36	236196
9	9	59049	9	177147
10	1	19683	1	59049

चित्र २—काल्पनिक प्रयोग—दस प्रयोगों के बाद अंशलका सान्द्रण

जितनी बार चाहें इस विधि को दोहराया जा सकता है। यदि इस विधि को १० बार किया जाये तो प्रत्येक ढेरी के पहले १० पात्रों में विलयशील होंगे। यदि सांद्रणों को भिन्न रूप में व्यक्त किया जाय तो क अंशों के हर १०२४ होंगे और ख अंशों के हर १,०४८,५७६ होंगे। इनके लव चित्र २ में दिये हुए हैं।

1. Fractions

2. Denominators

3. Numerator

यदि प्रत्येक सतह की सापेक्ष मात्राओं को दशमलव रूप में लिखा जाये तो सारणी १ में दी हुई संख्याएँ प्राप्त होंगी।

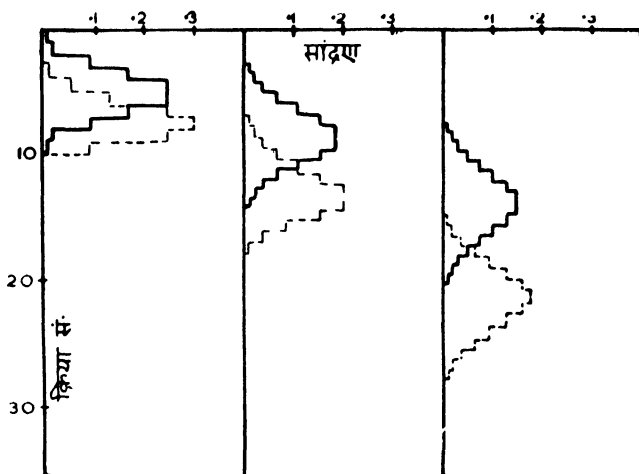
सारिणी १

सतह	क	ख
१.	०.००२	०.०००
२.	०.०१८	०.०००
३.	०.०७०	०.००१
४.	०.१६४	०.००९
५.	०.२४६	०.०३९
६.	०.२४६	०.११७
७.	०.१६४	०.२३४
८.	०.०७०	०.३००
९.	०.०१८	०.२२५
१०.	०.००२	०.०७५

जिन सतहों में क और ख का सांद्रण अधिकतम है, वे पृथक् हो चुकी हैं और ढेरियों के ऊपर वाले एवं निचले भाग में पृथक्करण होना शुरू हो गया है।

चित्र ३ में दिखाया गया है कि यदि इन प्रयोगों को २० या ३० बार किया जाये तो क्या नतीजा होगा। अब जो शकलें सामने आती हैं, वे विभाजन-स्तम्भ में होने वाली प्रक्रिया से कुछ-कुछ मिलती-जुलती हैं। यहाँ पर जो गणित अंक दिये गये हैं, वे मार्टिन एवं सिन्ज (४) के गणनात्मक "प्लेट" सिद्धान्त के अनुसार

हैं। इस में बताया गया है कि सांद्रण पट्टी^१ साधारणतया सामान्य “गलती” वक्र* के अनुरूप होती है। विलयशील के कुछ सूक्ष्म अंश ऊपरी सतह में रहते हैं, किन्तु जैसे-जैसे उनकी पट्टी स्तम्भ के नीचे की ओर खिसकती है उनकी ऊपरी सतह में मात्रा अत्यंत सूक्ष्म हो जाती है।



चित्र ३—काल्पनिक प्रयोग १०, २० एवं ३० क्रियाओं के बाद सान्द्रण

यह माना जा सकता है कि सिद्धान्त रूप से चलता हुआ विलायक विलयशीलों को अपने साथ ढेरी अथवा स्तम्भ में घसीटता रहता है, और इस घसीटने की गति साधारणतया उसके विभाजन-गुणक पर निर्भर होती है।

1. Band

* मान लीजिए आप शीशे के छोटे गेंदों को सीधी निश्चित दिशा में अंगुली से ढकेल रहे हैं। यदि आपके पास १०० गेंद हैं तो सबके सब सीधी दिशा में नहीं जायेंगे। अधिकतर सीधी दिशा में जायेंगे और कुछ बायीं ओर तथा कुछ दायीं ओर। यदि आपका प्रत्येक गेंद एक स्थान पर जाकर जम जाता है तो खेल के अन्त में शीशे के गेंदों का ढेर साधारण रूप से उस ढेर के समान होगा जो कि चित्र ३ में दायीं ओर दिखाया गया है। इस वक्र को संख्या-शास्त्र में “गलती” वक्र (error curve) कहते हैं।

एक और बात ध्यान देने लायक है। जैसे-जैसे ढेरियों में विलयशील नीचे खिसकता है उसका अधिकतम सांद्रण कम होता जाता है, अर्थात् विलयशीलों की पट्टी चौड़ी होती जाती है। ढेरियों के लम्बी होने पर विसार^१ (प्रसार) भी अधिक होता है, पट्टी चौड़ी होने पर भी यही प्रभाव होता है। (हम लोगों ने यह मान लिया है कि एक ही ढेरी के पात्रों में विलयशील एक पात्र से दूसरे में नहीं जा सकता, अर्थात् ऊर्ध्वधर धरातल में कोई विसार नहीं होता।) प्रायोगिक कठिनाई यह है कि क्रोमैटोग्राफीय प्रयोगों में यह प्रयत्न किया जाता है कि विभाजन-प्रक्रिया देर तक हो और इन प्रक्रियाओं की संख्या बढ़े, पर न तो पट्टी चौड़ी हो और न पृथक् होने वाले पदार्थों का सांद्रण कम हो।

जिस काल्पनिक प्रयोग का ऊपर वर्णन किया गया है उससे विभाजन-क्रोमैटोग्राफी के आदर्श स्तम्भ का चित्र प्राप्त होता है। वस्तुतः जब क्रोमैटोग्राफीय प्रयोग होता है तो प्रक्रिया एक के बाद दूसरी नहीं होती, अपितु वह बराबर होती चली जाती है। क्रोमैटोग्राफीय स्तम्भ में होने वाली इस प्रक्रिया का विस्तृत वर्णन बाद में किया जायेगा।

अब व्यावहारिक बातों की ओर ध्यान दीजिए। मार्टिन एवं सिन्ज (४) ने एक महत्त्वपूर्ण कार्य किया जब उन्होंने पानी से भीगी हुई सिलिका-श्लिषि^२ को स्तम्भ में स्थिर रूप से रखा और क्लोरोफार्म को चलते हुए द्रव रूप में प्रयुक्त किया। इस परिवर्तित विधि से बड़े महत्त्वपूर्ण फल प्राप्त हुए। उन्होंने २० सेंमी०^३ लंबी और १ सेंमी० व्यास वाली शीशे की नली को स्तम्भ रूप में प्रयुक्त किया। इस स्तम्भ में ५ ग्राम सिलिका-श्लिषि, ३-५ मिलीमीटर जल और १० मिलीमीटर क्लोरोफार्म लिया गया। दो मिलीग्राम ऐसीटिल-एव-प्रोलीन हाइड्रेट और २ मिलीग्राम ऐसीटिल-डीएल-फ्रिनाइल ऐलानीन के विलयन को स्तम्भ के ऊपर लगाया गया। शुद्ध क्लोरोफार्म को स्तम्भ के ऊपर से बूद रूप में टपकाया गया और नीचे से बहिरागामी^४ विलायक को विभिन्न अंशों^५ में इकट्ठा किया गया। विलयशीलों का पृथक्करण अच्छा हुआ। इन वैज्ञानिकों ने अपने सिद्धान्त के अनु-

1. Diffusion

2. Silica gel

3. सेंटीमीटर = सेंमी० Centimetre

4. Effluent

5. Fractions

सार विभाजन-गुणकों की गणना की। इस प्रकार जो मान प्राप्त हुए वे अधिक मात्रा में विलायकों के ज्ञात विभाजन-गुणकों से काफ़ी मिलते थे।

विलायक क्लोरोफ़ॉर्म में जब १ प्रतिशत नार्मल ब्यूटेनाल मिलाया गया, तब विलयशीलों का पृथक्करण और अच्छा हुआ। सिलिका-श्लिषि की तैयारी सावधानी से की गयी और उसे उदासीन मेथिल आरेंज के जलीय विलयन के साथ मिला कर स्तम्भ में भरा गया। इसके कारण पीली पृष्ठभूमि में पृथक् होने वाले विलयशीलों की हल्की गुलाबी पट्टियाँ स्तम्भ पर दिखाई देने लगीं।

जलीय भाग को स्तम्भ में स्थिर रखने के लिए अन्य पदार्थों का भी उपयोग किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, मूर एव श्टाइन (५) ने एक बड़े बढ़िया तरीके से अमीनो-अम्लों को पृथक् किया। उन्होंने स्टार्च को स्तम्भ में भरा और ब्यूटेनाल-प्रोपेनाल-अम्ल को विलायक रूप में प्रयुक्त किया।

क्रोमैटोग्राफी में फ़ेजों को बदला भी जा सकता है; जैसे, क्लोरीनयुक्त रबर को ठोस पदार्थ के रूप में स्तम्भ में लिया जा सकता है; इसमें अजलीय विलायक स्थिर रहता है। जल को स्तम्भ में बहने वाले द्रव की भाँति प्रयुक्त किया जा सकता है (६)।

विभाजन-क्रोमैटोग्राफी की विधि में प्रयुक्त अन्य वस्तुओं को भी बदलने का प्रयास किया गया है। इसमें मुख्य एवं सरलतम विधि वह है जिसमें सिलिका-श्लिषि-जैसे ठोस पदार्थ से भरे स्तम्भ के स्थान पर कागज़ का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार, स्तम्भ को तैयार करने के बजाय कागज़ के ताव को इस्तेमाल करने से ही काम चल जाता है। कान्सडेन, गार्डन एवं मार्टिन (७) ने इस विधि का विकास किया और अब इसका बहुत उपयोग होने लगा है।

कागज़ क्रोमैटोग्राफी

अभी जिन वैज्ञानिकों का जिक्र किया गया है, उन्होंने ज्ञात किया कि हवा से संतुलन में रहते हुए छनने कागज़ में जितने जल का अधिशोषण होता है, वह क्रोमैटोग्राफीय विधि को चलाने के लिए पर्याप्त है। इस विधि का इस प्रकार

प्रयोग किया गया—हवाटमैन नं० १ छनने कागज़ की एक लंबी स्ट्रिप^१ ली गयी। इसके नीचे के सिरे से तीन इंच दूरी पर पेंसिल से एक लकीर खींची गयी। इस लकीर के बीच में परख-द्रव की इतनी छोटी एक बूंद रखी गयी कि सूखने पर वह एक सेंटीमीटर व्यास से अधिक न हो जाये। परख-द्रव में अमीनो-अम्ल^२ थे। लम्बी स्ट्रिप के जिस सिरे पर यह प्रक्रिया की गयी उसको एक ऐसे पात्र में रखा गया जिसमें विलायक था। स्ट्रिप के दूसरे सिरे को एक उपयुक्त सहारे से लटका कर नीचे गिरा दिया गया। विलायक कागज़ की अति-सूक्ष्म केशनलियों^३ द्वारा कागज़ में फ़ौरन चढ़ने लगता है। जब पात्र में धरे विलायक की सतह तक कागज़ पर विलायक चढ़ जाता है तो वह साइफ़न की प्रक्रिया से बराबर ऊपर चढ़ कर नीचे आता जायेगा, जब तक कागज़ पात्र के विलायक में डूबा रहेगा। पात्र और स्ट्रिप दोनों को एक ढक्कनदार बड़े मर्तबान से ढँक दिया गया। यदि ऐसा नहीं किया जाता, तो वाष्पशील विलायक अधिक मात्रा में उड़ता रहता और कागज़ की स्ट्रिप पर उसकी मात्रा इच्छित अनुपात में नहीं रहती; अतः कागज़ पर लगे विलयशीलों का विलायक के साथ वांछित सापेक्ष चढ़ाव न हो पाता और विलयशील की बूंद एवं विलायक की गति में कोई निश्चित संबंध नहीं रहता।

रात भर तक विलायक को कागज़ में चढ़ने दिया गया। दूसरे दिन प्रातःकाल स्ट्रिप के उस स्थान पर पेंसिल से निशान लगा लिया गया जहाँ तक विलायक चढ़ा था। तत्पश्चात् स्ट्रिप को ऊष्मक^४ में सुखाया गया। ऊष्मक से सूखे हुए कागज़ को निकाला गया और उसके ऊपर निनहाइड्रिन का अभिगृह्यचन किया गया। तत्पश्चात् उसे पुनः ऊष्मक में रख दिया गया। कुछ मिनटों बाद जब विलायक उड़ गया तो पता चला कि कागज़ पर लगे विलयशील के छोटे धब्बों ने निनहाइड्रिन से प्रतिक्रिया कर के रंगीन यौगिक बना लिये थे। इनको कागज़ की स्ट्रिप पर मरलता से पहचाना जा सकता था।

उपर्युक्त प्रयोग में विलायक फ़ेज व्युटेनाल और स्थिर फ़ेज जल था। इनके उपयुक्त संतुलन के लिए प्रयोग के पहले ही व्युटेनाल को जल के साथ हिला कर

1. Strip
3. Capillaries

2. Amino-acids
4. Oven

व्यूटेनाल से संतृप्त^१ जल को मर्त्तबान के नीचे रख दिया गया था। इस प्रकार प्रयोग के दौरान में दोनों विलायकों का अनुचित रूप से उड़ना रोका गया। प्रयोग से यह ज्ञात हुआ कि प्रत्येक अमीनो-अम्ल को एक मान से व्यक्त किया जा सकता था। यह मान विलायक के साथ अमीनो-अम्ल के सापेक्ष अग्रभाग^२ को बताता है। कान्सडेन, गार्डन और मार्टिन ने इस मान को “साअ”^३ कहा और इसकी निम्न-लिखित परिभाषा बतायी—

सापेक्ष अग्रभाग साअ = $\frac{\text{स्ट्रिप पर मूलबिंदु से विलयशील की दूरी}}{\text{स्ट्रिप पर मूलबिंदु से विलायक की दूरी}}$

इन वैज्ञानिकों ने ज्ञात किया कि दुबारा प्रयोग करने पर अमीनो-अम्लों के ‘साअ’ मान आपस में काफ़ी मिलते थे और विलायक को बदलने पर ये बदल जाते थे। चूँकि ‘साअ’ मान प्रत्येक विलायक के लिए भिन्न होते थे, अतः दो विलायकों से प्रयोग करने पर साधारण अमीनों-अम्लों का लक्षण-निर्धारण पर्याप्त रूप से किया जा सकता था।

इस तथ्य के कारण इन वैज्ञानिकों ने कागज़ की स्ट्रिप के स्थान पर कागज़ के बड़े ताव को लिया और उस पर द्वि-आयामी^४ क्रोमेटोग्राम^५ बनाया। जिन लकीरों पर अमीनों-अम्लों की छोटी बूंदों को रखना था, उनको कागज़ के ताव के दोनों ओर दो आयामों में नीचे के सिरे से लगभग तीन इंच दूर लगाया गया। जहाँ पर ये दोनों लकीरें आपस में कटती थीं वहाँ पर परख-द्रव की बूंद को रखा गया। पहले की भाँति, इस कागज़ के ताव के एक किनारे को एक विलायक भरे पात्र में डुबोया गया और यह विलायक बूंद के विलयशीलों को एक दिशा में कागज़ पर घसीटता रहा। जब इस दिशा में विलायक पर्याप्त रूप से चढ़ गया, तब कागज़ के ताव को निकाल कर सुखा लिया गया। इसके बाद, दूसरे विलायक के साथ यही विधि दूसरे आयाम (पहली दिशा की अपेक्षा लंब वाली दिशा) में की गयी। इन प्रयोगों के फलस्वरूप जो क्रोमेटोग्राम बनता है, उसको “मानचित्र” कहा जा सकता है। इसको शीघ्रता से देख कर एक मिश्रण में किसी अमीनो-अम्ल की उपस्थिति को जाना जा सकता है।

1. Saturated

2. Front

3. Relative Front = R_f

4. Two-dimensional

5. Chromatogram

कागज द्वारा विभाजन-क्रोमैटोग्राफी को सूक्ष्म-स्तर पर किया जाता है। स्तम्भ द्वारा इसे अर्द्ध-सूक्ष्म^१ स्तर पर किया जा सकता है। इन विधियों से पदार्थों को तो सरलता से पहचाना जा सकता है, किन्तु इनसे पदार्थों को पृथक् करके बड़ी मात्रा में तैयार नहीं किया जा सकता। इस प्रकार, विभिन्न विलायकों में विभिन्न विलेयता का केवल यौगिकों के पहचानने में उपयोग किया गया है। कागज-क्रोमैटोग्राफी की विधि बड़ी सस्ती है, अतः इसका बहुत अधिक उपयोग हुआ है। दूसरे अध्याय में कागज-क्रोमैटोग्राफी का विस्तृत वर्णन किया जायेगा। इसकी अद्भुत उपयोगिता का एक उदाहरण यहाँ दिया जा रहा है।

यदि अमीनो-अम्लों के मिश्रण में कोई पेप्टाइड मिला हुआ है तो कागज के पूरे ताव में आरम्भ-रेखा पर परख-द्रव की छोटी-छोटी बूंदों को लगा दिया जाता है। जब कागज पर विलायक चढ़ जाता है तो इसे सुखा कर क्रोमैटोग्राम बना लिया जाता है। कागज के दोनों बाहरी छोरों पर केवल अंतिम दो लकीरों के धब्बों की निनहाइड्रिन से प्रतिक्रिया की जाती है। अब विलायक के चढ़ने की दिशा से लंब रूप में केवल दो निनहाइड्रिन-पेप्टाइड धब्बों को बाहर रखते हुए कागज पर पेंसिल से दोनों ओर रेखाएँ खींच ली जाती हैं। यहाँ पर से कागज को काट कर एक स्ट्रिप प्राप्त की जाती है; इसमें केवल पेप्टाइड के ही धब्बे होते हैं। अब किसी उपयुक्त विलायक से इस स्ट्रिप में लगे विलयशीलों का निष्कासन^२ किया जाता है। विलायक धीरे धीरे स्ट्रिप में से चढ़ कर किसी एक पात्र में बूंद बूंद टपकता रहता है। तत्पश्चात् इस पात्र के विलायक को उड़ा दिया जाता है। सूखने पर जो पदार्थ बच रहता है उसका हाइड्रोक्लोरिक अम्ल के साथ जल-विश्लेषण^३ किया जाता है। तत्पश्चात् हाइड्रोक्लोरिक अम्ल को उड़ा कर उसमें पानी भरा जाता है। अब जो विलयन प्राप्त होता है उसको पुनः कागज के ताव पर लगाया जाता है और पेप्टाइड में उपस्थित अमीनो-अम्लों की क्रोमैटोग्राफीय विधि से फिर पहचान की जाती है। इस विधि को और भी सूक्ष्म-स्तर पर केवल एक या दो दिनों में किया जा सकता है।

1. Semi-micro
3. Hydrolysis

2. Elution

विभाजन क्रोमैटोग्राफी को प्रभावित करनेवाली दशाएँ

अभी तक केवल विभाजन-क्रोमैटोग्राफी का वर्णन किया गया है, जिसमें विभाजन केवल दो अमिश्र्य फ़ेजों के बीच में होता है और स्थिर फ़ेज को एक ठोस पदार्थ के साथ स्तम्भ में भर कर रखा जाता है। अब ध्यान देने योग्य बात यह है कि ठोस पदार्थ अपने अधिशोषक गुणों के कारण क्रोमैटोग्राफीय विधि में दखल दे सकता है। वस्तुतः, कागज-क्रोमैटोग्राफी में, जहाँ जल द्रव-फ़ेज में स्पष्ट रूप से सामने नहीं आता, अधिशोषण के कारण कुछ प्रयोग खराब हो जाते हैं।

कुछ अनुसंधान-कर्त्ताओं का कहना है कि क्रोमैटोग्राफी में अधिशोषण के कारण पदार्थ पृथक् होते हैं। टिज़ेलियस के काठकोयले^१ के चूर्ण से भरे स्तम्भ और स्टार्च एवं सिलिका-श्लिषि से भरे कुछ स्तम्भों में ऐसा जान पड़ता है कि अधिशोषण का ही क्रोमैटोग्राफीय विधि पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है। किन्तु उन स्तम्भों में जिनमें—(क) स्थिर फ़ेज केवल द्रव रूप में ही नहीं, अपितु ठोस फ़ेज में भी रहता है; और (ख) ठोस तथा द्रव फ़ेजों की कुछ जटिल अवस्थाएँ प्राप्त हो जाती हैं पर वे स्थिर “फ़ेज” में ही बने रहते हैं, मार्टिन (८) द्वारा प्रतिपादित “विभाजन” के विचार को गणनात्मक रूप से क्रोमैटोग्राफीय विधि में लगाया जा सकता है।

आयन-विनिमय^३ क्रोमैटोग्राफी में भी दो फ़ेज होते हैं—(क) चलता हुआ जलीय फ़ेज, और (ख) स्थिर जलीय आयन-रेज़िन^२ फ़ेज। यहाँ पर यह बतलाना उचित होगा कि सक्रिय काठकोयले (९) से गैसों और वाष्पों को पृथक् करने के लिए क्रोमैटोग्राफीय विधियों का प्रयोग किया गया है। यदि हम “विभाजन” के विचार का विस्तार करें और “द्रव” फ़ेज के स्थान पर “गैस” फ़ेज की कल्पना करें, तो इसका वर्गीकरण “गतिज-विभाजन” में होना चाहिए।

अन्य क्रोमैटोग्राफीय विधियाँ

अभी क्रोमैटोग्राफी संबंधी जिन विचारों का वर्णन किया गया है उनसे ऐसी अन्य विधियों का भास होता है जिनमें पृथक्करण केवल दो विलायकों के विभाजन पर निर्भर नहीं रहता।

1. Factors

2. Charcoal

3. Ion-exchange

4. Ion-resin

जिस आदर्श प्रयोग का इस अध्याय में पहले वर्णन किया गया है, उसके मुख्य लक्षण ये हैं—प्रथम, एक स्थिर फ्रेज के ऊपर दूसरे फ्रेज का चलना; और दूसरा, दो विलयशीलों के विभाजन-गुणकों का अंतर। यदि “फ्रेज” के विचार को विस्तृत करके उसमें उन संयुक्त^१ प्रणालियों को भी शामिल किया जाये जिनमें विलयशील को उलट कर लगाया जा सकता है, तो ये मुख्य लक्षण तब भी रह सकते हैं। इस प्रकार, “फ्रेज” दो चीजों से बनता है—विलायक+ठोस अवशेषक।^२ स्थिर फ्रेज में केवल ठोस अवशेषक रह सकता है। इस दशा में “विभाजन-गुणक” के स्थान पर दो विलायक प्रणालियों में “वितरण-अनुपात” का प्रयोग होना चाहिए। अब यह स्पष्ट हो गया होगा कि दो विलायक प्रणालियों का अमिश्र्य होना आवश्यक नहीं है।

“अधिशोषण-क्रोमैटोग्राफी” एवं “आयन-विनिमय क्रोमैटोग्राफी” दोनों शब्द काफ़ी प्रचलित हैं; इनमें अंतर यही है कि आयन-विनिमय क्रोमैटोग्राफी में अमिश्र्य विलायकों का पृथक्करण केवल विभाजन पर ही आधारित नहीं होता। कुछ ऐसे उदाहरण ज्ञात हैं जिनमें यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि पृथक्करण “विभाजन” अथवा “अधिशोषण” पर आधारित है। पर अभी तक जो बताया गया है उससे ऐसे “गतिज-विभाजन” की कल्पना की जा सकती है जिसमें विभाजन, अधिशोषण एवं आयन-विनिमय तीनों का सम्मिश्रण हो; इसी विधि को क्रोमैटोग्राफी कहते हैं।

अधिशोषण क्रोमैटोग्राफी

साधारणतया, अधिशोषण-क्रोमैटोग्राफी में ऐसे स्तम्भ का प्रयोग होता है जिसमें चलते हुए द्रव फ्रेज से भीगे बारीक अधिशोषक-चूर्ण का प्रयोग होता है। पृथक् किये जाने वाले पदार्थ को उपयुक्त विलायक में घोला जाता है और इसको स्तम्भ पर लगा दिया जाता है। स्तम्भ पर जितना पदार्थ लगाया जाता है वह स्तम्भ में अधिशोषित हो सकने वाले पदार्थ की अपेक्षा कम होता है। जब उपयुक्त मात्रा में मिश्रण को ऊपर लगा दिया जाता है, तो शुद्ध विलायक को बूँद-बूँद करके स्तम्भ पर टपकाया जाता है और इसे स्तम्भ में बहने दिया जाता है। विभाजन-क्रोमैटो-

ग्राफी के स्तम्भ में होने वाली विधि इस स्तम्भ में होने वाली विधि से कुछ मिलती-जुलती है। पहले की भाँति, बहते हुए विलायक के कारण विलयशील धीरे-धीरे स्तम्भ में पृथक् होते जाते हैं।

उदाहरणार्थ, स्वेट ने खड़िया के बारीक चूर्ण को स्तम्भ में भरा और पेट्रोल-ईथर में हरी पत्तियों के रंग-द्रव्य के सार को उसके ऊपर लगाया। रंगद्रव्य कई रंगीन पट्टियों में पृथक् हो गया। स्वेट ने शीशे के स्तम्भ में से खड़िया के स्तम्भ को धीरे से बाहर निकाला और चाकू से विभिन्न पट्टियों को काट लिया। रंगीन द्रव्यों को बाद में खड़िया से निष्कासित कर लिया गया।

अधिशोषण विधि के उपयोग में कई कठिनाइयाँ हैं—अधिशोषण बहुत धीरे हो सकता है, अपूर्ण भी हो सकता है और कभी-कभी स्तम्भ का पदार्थ बहते द्रव पर अधिशोषित हो सकता है। इन कारणों से पृथक्करण पूर्ण नहीं होता और विलयशील पूरी मात्रा में प्राप्त नहीं होते। एक और कठिनाई यह है कि समान गुण-धर्म वाले अधिशोषक के नमूने मुश्किल से मिलते हैं। कभी-कभी तो ऐसा होता है कि एक ही ढेर वाले पदार्थ से बनाये गये विभिन्न स्तम्भों में भी अंतर होता है। सौभाग्यवश, अधिशोषण-क्रोमैटोग्राफी की विधियाँ अधिशोषक एवं विलायक के साथ विशिष्ट नहीं होतीं। फलतः, विलयशीलों के किसी मिश्रण को पृथक् करने के लिए कई “विलायक-प्रणालियों” को बार-बार करना पड़ता है जब तक कि ठीक अधिशोषक और उसके लिए उपयुक्त विलायक न ज्ञात हो जाये। उदाहरणार्थ, जेखमाइस्टर (१०) ने जैथोफ़िल के पृथक्करण के लिए निम्नलिखित प्रणालियों को ज्ञात किया—(क) मैगनीसिया (अधिशोषक) और लाइट पेट्रोलियम + २५ प्रतिशत ऐसीटोन (विलायक); और (ख) शर्करा (अधिशोषक) और लाइट पेट्रोलियम + १ प्रतिशत प्रोपेनाल (विलायक)। इन दोनों प्रणालियों में पृथक्करण हो जाता है, किन्तु पृथक् होने वाले पदार्थों का क्रम भिन्न होता है। कैरीटोन के परिमाणन के लिए जेखमाइस्टर ने कैलसियम हाइड्राक्साइड के स्तम्भ का प्रयोग किया; इसमें भी विलायक लाइट पेट्रोलियम रखा गया और इसमें अधिशोषक के अनुसार ०-३ प्रतिशत तक ऐसीटोन मिला दिया गया।

1. Pigment
3. Xanthophyll

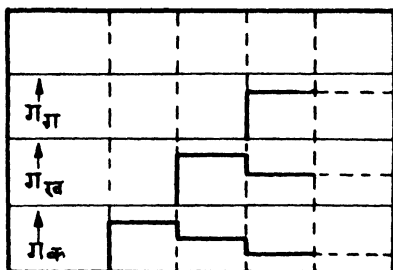
2. Bands
4. Estimation

अग्रभागीय विश्लेषण^१

इस विशेष प्रकार की अधिशोषण-क्रोमैटोग्राफी का टिजेलियस ने विकास किया। इसमें अधिशोषण प्रक्रिया के अतिरिक्त कुछ दशाओं में अन्य प्रक्रियाएँ भी होती हैं।

अभी तक जिन विधियों का वर्णन किया गया है, उनमें विलयशीलों का मिश्रण स्तम्भ के ऊपर एक पतली पट्टी के रूप में लगा दिया जाता है। स्तम्भ पर विलयशील रहित विलायक के बहने के कारण विलयशील धीरे-धीरे पृथक् हो जाते हैं। यदि बहिरागामी के पहले कुछ नमूनों का परीक्षण किया जाये तो ज्ञात होगा कि सर्व-प्रथम उनमें केवल शुद्ध विलायक ही बाहर आता है। तत्पश्चात् विलयशील की पहली पट्टी प्रकट होती है और शीघ्र ही उसका सांद्रण अधिकतम हो जाता है। क्रमशः, विलायक शुद्ध रूप में बाहर निकलने लगता है। यह प्रक्रिया विलयशील की प्रत्येक पट्टी के उपरान्त होती है।

अग्रभागीय—विश्लेषण में स्तम्भ का विभिन्न प्रकार से उपयोग किया जाता है। विलय-शीलों का मिश्रण विलायक में रहता है और इसे स्तम्भ पर बराबर डाला जाता है। स्तम्भ से बाहर आने वाले द्रव (बहिरागामी) के पहले कुछ अंश केवल शुद्ध विलायक रूप में होते हैं। जब स्तम्भ में काफी देर तक मिश्रण बह चुकता है और स्तम्भ संतृप्त हो जाता है तब ऊपर से डाले जाने वाले मिश्रण का विलयन और बहिरागामी एक ही होते हैं। इन दोनों दशाओं के बीच में विभिन्न विलयशील विभिन्न मात्रा में स्तम्भ पर अधिशोषित होते हैं। बहिरागामी में सर्वप्रथम वह विलयशील आता है जिसका स्तम्भ पर अधिशोषण न्यूनतम हुआ है।



बहिरागामी का आयतन

चित्र ४—अग्रभागीय विश्लेषण विलयशीलों का बहिरागामी में क्रमपूर्वक प्रकट होना

का बहिरागामी में क्रमपूर्वक प्रकट होना

1. Frontal Analysis

जब विलायक के बहने का वेग काफी कम होता है और स्तम्भ काफी लंबा होता है तो संतुलन अवस्थाएँ प्राप्त हो जाती हैं और बहिरागामी में विलयशील क्रमिक रूप से^१ आते हैं। यदि तीन विलयशीलों—क, ख और ग—के अधिशोषक गुण-धर्म (ग) के लिए अधिकतम एवं (क) के लिए न्यूनतम हैं तो बहिरागामी में उनके सांद्रण चित्र ४ की भाँति प्रकट होंगे।

अग्रमागीय-विश्लेषण की विधि का लाभ यह है कि विलयशीलों के मिश्रण का लक्षण-निर्धारण एवं परिमाणन उस दशा में भी हो सकता है जब स्तम्भ पर अधिशोषण लगभग अपलटनीय^२ हो। फलतः, इससे उन विलयशीलों का भी पृथक्करण हो सकता है जिनका पृथक्करण आणविक जटिलता के कारण अन्य विधियों से सम्भव नहीं है।

विस्थापन क्रोमैटोग्राफी

यह क्रोमैटोग्राफीय विश्लेषण की वह अति उपयोगी विधि है जिसमें स्तम्भ में आयन-विनिमय पदार्थ रहते हैं। विभाजन-क्रोमैटोग्राफी की भाँति पृथक् किये जाने वाले मिश्रण की थोड़ी मात्रा स्तम्भ के ऊपर लगा दी जाती है। किन्तु इसमें शुद्ध विलायक द्वारा स्तम्भ के निष्कासन के बजाय “प्रस्फुटी” विलयन^३ का उपयोग किया जाता है। इस विलयन में एक ऐसा विलयशील होता है जो स्तम्भ पर मिश्रण के किसी भी विलयशील की अपेक्षा अधिक मजबूती से अधिशोषित होता है। अतः, जैसे-जैसे वह स्तम्भ पर बहता है, वह अधिशोषित विलयशीलों को “विस्थापित” करता जाता है। प्रस्फुटी विलयन वस्तुतः एक पिस्टन की भाँति काम करता है जो विलयशीलों की पट्टियों को क्रम-पूर्वक धीरे-धीरे नीचे ढकेलता रहता है। जो विलयशील स्तम्भ में न्यूनतम शक्ति से अधिशोषित होता है वह सबसे पहले विस्थापित होता है। स्तम्भ पर पहले तो मिश्रण उसी रूप में ही थोड़ी दूर तक चलता है; बाद में, शुद्ध पट्टियों के रूप में वह धीरे धीरे अलग हो जाता है। ये पट्टियाँ एक दूसरे के संपर्क में रहती हैं। व्यवहार में यह देखा गया है कि वे

1. Stepwise

2. Irreversible अप्रतिवर्त्य

3. Developing solution

किनारे पर एक दूसरे के ऊपर ढँक जाती हैं, किन्तु प्रायोगिक विधि में सुधार करके इस ढँक जाने (आच्छादन) को कम किया जा सकता है।

ऐसे स्तम्भों में से निष्कासक के अंशों को क्रमपूर्वक एकत्रित किया जाता है। जब प्रस्फुटी विलयशील ही बाहर निकलने लगता है तो समझ लिया जाता है कि स्तम्भ प्रस्फुटी विलयशीलों से संतृप्त हो गया है। ऐसे संतृप्त स्तम्भ पर जब ऐसे विलयन की प्रक्रिया की जाती है जिसमें दूसरे चार्ज वाला आयन होता है तो वह स्तम्भ को फिर से ठीक कर देता है। बाद में शुद्धि के लिए इसे आसुत जल से धो दिया जाता है। इस प्रकार, इस स्तम्भ का कई बार प्रयोग हो सकता है, किन्तु यह प्रक्रिया कितनी बार हो यह इस बात पर निर्भर है कि स्तम्भ में प्रयुक्त रेजिन का रासायनिक स्थायित्व कितना है।

चूँकि इस विधि में विलयशीलों की पट्टी एक दूसरे से किनारे पर ढँकी (आच्छादित) रहती है, अतः इससे परिमाणात्मक पृथक्करण नहीं होते। आयन-विनियम स्तम्भों पर विस्थापन की उपयोगिता यह है कि इनमें विलयशीलों की काफी अधिक मात्रा ली जा सकती है। इसका अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि आजकल ऐसे रेजिन प्राप्य हैं जो शुष्क अवस्था में १ से ५ मिली-समतुल्य प्रति ग्राम भार तक पदार्थों का अधिशोषण कर सकते हैं। अतः यह विधि उन रासायनिक कार्यों के लिए बड़ी उपयोगी है जिनमें ०.१ ग्राम या इससे अधिक पदार्थों की तैयारी करनी हो।

जल को मृदु बनाने के लिए ज़ियोलाइट का उपयोग होता है। इसमें जो सिद्धांत लगता है, वही आयन-विनियम क्रोमैटोग्राफी में भी उपयुक्त हो सकता है। वस्तुतः रेजिन ज़ियोलाइटों की नक़ल करके ही बनायी गयी। जब इनका क्रोमैटोग्राफी में उपयोग विदित हुआ तो विशेष प्रकार के रेजिनों का विकास किया गया। अब धन-आयन एवं ऋण-आयन विनियम रेजिन काफी मात्रा में व्यापारिक रूप से उपलब्ध हैं। ये रासायनिक रूप से स्थायी होती हैं और इनके अधिशोषक गुण-धर्म काफी विशिष्ट होते हैं। इनमें कुछ रेजिन ऐसी भी होती हैं जो केवल एक प्रकार का ही कार्य कर सकती हैं। ऐसी रेजिनों में केवल एक

1. Quantitative

2. Milli-equivalents

3. Monofunctional

प्रकार का रासायनिक समूह होता है जो आयन-विनिमय प्रतिक्रिया में भाग लेता है।

क्रोमैटोग्राफीय विधियों के सिद्धान्त

अब तक तीन प्रकार की क्रोमैटोग्राफीय विधियों में भेद किया गया है—विभाजन, अधिशोषण और आयन-विनिमय। क्रोमैटोग्राफीय स्तम्भों पर कार्य करने की भी तीन विधियाँ बतायी गयी हैं—निष्कासन, अग्रभागीय-विश्लेषण और विस्थापन। फलतः, क्रोमैटोग्राफीय विधियाँ ९ प्रकार की होती हैं। इनमें से कुछ विधियों पर अभी अन्वेषण कार्य नहीं हुआ है।

अब प्रश्न यह उठता है कि किसी मिश्रण को पृथक् करने के लिए इनमें से कौन-सी विधि चुनी जाये। यह चयन पृथक् किये जाने वाले विलयशीलों की प्रकृति पर निर्भर होता है और इस चयन में अनुसंधान-कर्ताओं द्वारा किया पूर्व कार्य सिद्धांत की अपेक्षा अधिक सहायक होता है।

क्रोमैटोग्राफीय विधि के लिए गणित सिद्धांत प्रतिपादित करने के लिए कई प्रयास किये गये हैं। इस पुस्तक के लेखकों को ऐसा कोई भी प्रयास ज्ञात नहीं है जिसमें इन विधियों के सारे ज्ञात तथ्यों की पर्याप्त रूप से सैद्धान्तिक विवेचना की गयी हो। क्रोमैटोग्राफीय विधि काफी जटिल है और इसके गणित-विवेचन के लिए कुछ बातें मान ली जाती हैं। किन्तु इनसे जटिल विधि को ठीक प्रकार से व्यक्त नहीं किया जा सकता। उदाहरणतया, इन गणित सिद्धान्तों में क्रोमैटोग्राफीय विधि में होने वाले विसार^१ (प्रसार) के महत्त्व को भुला दिया जाता है। कुछ सैद्धान्तिक प्रतिपादनों में कल्पना की जाती है कि ठोस अधिशोषक में विलयशील का विसार तुरन्त हो जाता है; कुछ विवेचनों में ऐसा मान लिया जाता है कि पूरे स्तम्भ में विसार इतने धीमे होता है कि उसको गौण समझा जा सकता है। ये दोनों अनुमान ठीक नहीं हैं, स्पष्ट रूप से वे परस्पर विरोधी दिखाई देते हैं।

एक बात और है। अभी तक जितने सिद्धान्त प्रतिपादित हुए हैं उनमें अधिशोषण होते समय ठोस अधिशोषक के आयतन में परिवर्तन को भुला दिया जाता है। इसके कारण स्तम्भ में बहते हुए फ्रेज़ की गति पर काफी प्रभाव पड़ता है और इससे कभी-कभी स्तम्भ की समांगता^२ भी नष्ट हो जाती है।

इन कारणों से यहाँ पर क्रोमैटोग्राफीय विधियों का सैद्धान्तिक विवेचन नहीं किया गया है। यहाँ जहाँ पर सैद्धान्तिक विचारों से प्रायोगिक कार्य में सहायता मिलती है वहाँ पर उपयुक्त रूप से उनका समावेश कर दिया गया है। जो पाठक क्रोमैटोग्राफी के साधारण सिद्धान्त जानना चाहें वे कृपया Discussions of the Faraday Society No. 7 (Gurney & Jackson, London, 1949) को पढ़ें। इसमें क्रोमैटोग्राफीय विधियों के सैद्धान्तिक विवेचन में कठिनाइयों और अनिश्चित दशाओं का सुंदर प्रतिपादन किया गया है।

अध्याय २

कागज-क्रोमेटोग्राफी

कान्सडेन, गार्डन एवं मार्टिन (७) द्वारा १९४४ में प्रकाशित शोध-निबंध वस्तुतः महान् शोध-कार्य है। ये वैज्ञानिक प्रोटीन के आंशिक जल-विश्लेषण^१ से प्राप्त पदार्थों का अन्वेषण कर रहे थे और इस प्रकार यह गवेषणा अमीनो-अम्लों और पेप्टाइडों से संबंधित थी। इन व्यक्तियों ने जिस विधि का विकास किया, उसमें अभी तक कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं हुआ है। अतः उनके शोध-निबंध का यहाँ वर्णन किया जायेगा। इसके पश्चात् उनकी विधि में हुए महत्वपूर्ण परिवर्तनों पर भी प्रकाश डाला जायेगा।

इन वैज्ञानिकों ने सरल उपकरण का उपयोग किया। मर्त्तबान के स्थान पर एक नाली-नली^२ (नालियों में प्रयुक्त थोड़े मोटे नल) का उपयोग किया गया। इसको सीस पात्र^३ में खड़ा किया गया। पात्र में द्रव पदार्थ था जिससे पर्याप्त रूप से जलीय फ्रेज़ बनता था। इस नली के ऊपर वाले भाग को घिस कर चपटा कर लिया गया और उसे शीशे की पतली चद्दर के छोटे टुकड़े से ढक दिया गया। इस नली के ऊपरी भाग में जो चौड़ा हिस्सा होता है उसमें आसानी से शीशे का लंबा प्याला^४ रखा जा सकता था। यह प्याला विशेष रूप से बनाया गया था। शीशे की ३/४ इंच व्यास की नलिका ली गयी और उसके उपयुक्त लंबे टुकड़े को काट कर दोनों सिरों को शीशा पिघला कर बन्द कर दिया गया; तत्पश्चात् इस नली के लंबे भाग की एक सतह को घिसा गया। इससे नली धीरे-धीरे कमज़ोर होती गयी और अंत में वह खुल गयी—इस प्रकार लंबे प्याले का ऊपरी खुला भाग बन गया। चित्र ५ ख और ५ ग में शीशे (काँच) की वे छड़ें दिखायी गयी हैं जिन पर कागज लटकाया गया था। यदि इन छड़ों का उपयोग नहीं किया जाता तो कागज प्याले

1. Partial hydrolysis

2. Drain-pipe

3. Lead dish

4. Trough कूँड़ा, द्रोणी।

कागज-क्रोमेटोग्राम के लिए 'व्हाटमैन' नं० १ छनने कागज की स्ट्रिप का उपयोग किया गया। यह १.५ सेंमी० या इससे कुछ अधिक चौड़ी थी और २०-५६ सेंमी० तक लंबी थी। पट्टी के निचले भाग से ७.५ सेंमी० की दूरी पर पेंसिल से एक लकीर खींची गयी और इसके ऊपर २ से ४ माइक्रोलिटर की एक वृंद रखी गयी। इसमें प्रत्येक अमीनो-अम्ल की मात्रा ५ से १५ माइक्रोग्राम तक थी। बूंद को लगाने की विधि यह थी —

परख-द्रव^१ को एक केश-नलिका^३ में थोड़ा भर लिया गया और इसके बाहर लगे द्रव के छनने कागज से सोख लिया गया। तत्पश्चात् इस केश-नलिका को स्ट्रिप पर खिंची पेंसिल की लकीर (आरम्भ-रेखा) से धीरे से छुआ दिया गया। इन बूंदों को कागज की स्ट्रिप के निचले भाग पर इस कारण नहीं लगाया गया क्योंकि इससे विलायक के सम रूप से बहने में बाधा पड़ती।

कागज की पट्टी के ऊपरी भाग को शीशे के लवे प्याले में रखे विलायक में डुबो कर शीशे की छड़ से दबा दिया गया। अब प्याले और कागज को नाली-नली में लाया गया। इसकी तैयारी पहले ही कर ली गयी थी—विलायक द्वारा संतृप्त जल से भरे सीस-पात्र^४ में शीशे (काँच) की चदर से ढक कर इसे पहले ही रखा जा चुका था। जलीय फ़ेज़ का वर्णन बाद में किया जायेगा। प्याले और कागज को नाली-नली में रख कर शीशे की चदर ढक दी गयी।

विलायक एक दिन में ३० से ५० सेंमी० तक नीचे दौड़ आता था। इसका वेग ताप अथवा विलायक की प्रकृति पर निर्भर रहता है। जब विलायक उपयुक्त दूरी तक कागज पर नीचे दौड़ आया तो कागज की पट्टी को बाहर निकाल कर १००° पर सुखा लिया गया। तत्पश्चात् निनहाइड्रिन विलयन (ट्राइकीटो हाइड्रिनडीन हाइड्रेट की ०.१ नार्मल ब्यूटेनाल में) की फुहार छोड़ी गयी और इसे सुखा लिया गया। अब की बार इसे पाँच मिनट तक गरम किया गया जिससे अमीनो-अम्ल और निनहाइड्रिन की प्रक्रिया से रंगीन धब्बे पूर्ण रूप से प्रस्फुटित^५ हो जायें। फुहार छोड़ने के लिए शीशे के एक साधारण फव्वारे से अच्छी तरह काम चल जाता है।

1. Whatman (No. 1 Filter-paper)

2. Test Liquid

3. Capillary

4. Lead Tray

5. Develop

निनहाइड्रिन के साथ अमीनो-अम्लों के अधिकतर रंग बैजनी-भूरे^१ रंग के होते हैं; किन्तु कुछ का लक्षण-निर्धारण^२ केवल रंग द्वारा ही हो जाता है। उदाहरणार्थ, प्रोलीन और हाइड्राक्सी प्रोलीन पीले घब्बे बनाती है; ऐस्परागीन बादामी-भूरे रंग का घब्बा बनाती है; फ़िनाइल-ऐलानीन, टायरोसीन और हिस्टीडीन के घब्बों में लाली नहीं होती, जिनके कारण ये बैजनी-भूरे की अपेक्षा नीले-भूरे रंग के कारण पहचानी जा सकती हैं।

घब्बों का लक्षण-निर्धारण सांभ्र (देखिए अध्याय १) मानों से भी किया जा सकता है। मार्टिन एवं सिन्ज ने विभाजन स्तम्भ (४) में लगे सूत्र से निम्नलिखित सूत्र बनाया—

$$v = \frac{\text{क्षवि}}{\text{क्षज}} \quad \frac{(1-1)}{\text{सांभ्र}}$$

जहाँ, v = विभाजन - गुणक,

क्ष वि = विलायक फ़ेज के गोल-काट का क्षेत्रफल, और

क्ष ज = जल फ़ेज के गोल-काट का क्षेत्रफल।

क्रोमेटोग्राम में विलायक फ़ेज एवं जल-फ़ेज के अनुपात को $\frac{\text{क्षवि}}{\text{क्षज}}$ के बराबर मान लिया गया। अमीनो-अम्लों के कई मिश्रण बनाये गये। इनमें ग्लाइसीन को भी मिला लिया गया। अब इन मिश्रणों के कई क्रोमेटोग्राम प्राप्त किये गये। कागज की जलीय मात्रा का मान ऐसा मान लिया गया जिससे ग्लाइसीन का विभाजन-गुणक उतना आये जितना प्रयोग द्वारा प्राप्त होता है। अब इसी मान को लेकर अन्य अमीनो-अम्लों के विभाजन-गुणकों की भी गणना की गयी। ज्ञात हुआ कि उपर्युक्त सूत्र से गणित विभाजन-गुणकों और वास्तविक विभाजन-गुणकों में संतोषजनक समता थी। इस प्रकार निम्नलिखित बातें निश्चित की गयीं—

- (क) प्रयोग दोहराने पर सांभ्र मान पुनःशील (पुनरुत्पादनीय)^३ पाये गये,
- (ख) ताप के कारण सांभ्र मानों में अधिक अंतर नहीं पड़ा, और
- (ग) यदि अधिक मात्रा में अमीनो-अम्लों के वितरण से विभाजन-गुणक

1. Purple grey
3. Reproducible

- 2 Characterisation

ज्ञात किये जायें, तो उनके मान, साथ मानों से गणित विभाजन-गुणकों से काफ़ी मिलते थे।

इन वैज्ञानिकों के शोध-निबंध के अन्य महत्वपूर्ण विचार ये हैं—

(क) निनहाइड्रिन से कागज पर अंगुली के चिह्नों को प्रस्फुटित किया जा सकता है।

(ख) यदि अधिक सांद्रण वाले विलयनों को कागज पर लगाया जाये तो इससे धब्बों के रंग और उनकी शकल में अंतर पड़ सकता है।

(ग) कागज में ताँबे के रूप में अशुद्धता होती है। कुछ विलायकों से ताँबा हलके गुलाबी रंग का धब्बा बनाता है। इस धोखे देने वाले धब्बे से सावधान रहना चाहिए। फ़ीनोल-अमोनिया विलायक से यह गहरे रंग की एक पट्टी बनाता है जो बढ़ते हुए विलायक के अग्रभाग से थोड़ी पीछे होती है।

(घ) कार्बनिक अम्लों के अमोनियम लवणों और अन्य कई भस्मों से निनहाइड्रिन प्रतिक्रिया करती है।

(ङ) विलायक के कागज पर दौड़ते समय यदि ताप में परिवर्तन हो तो इससे दोनों फ़ेजों की पारस्परिक विलयता पर प्रभाव पड़ता है। यदि यह ताप-परिवर्तन काफ़ी अधिक हो तो कभी-कभी विलायक में से जल पृथक् हो जाता है और जल के कारण क्रोमेटोग्राम के धब्बे कागज पर फैल कर धुंधले पड़ जाते हैं।

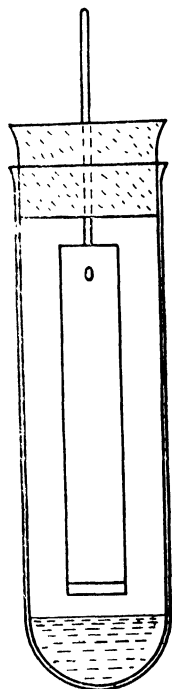
इस शोध-निबंध में इन वैज्ञानिकों ने “द्वि-आयामी” क्रोमेटोग्रामों के सफल प्रयोगों का भी वर्णन किया है। इनका वर्णन इस अध्याय के बाद में किया जायेगा।

उपकरण में परिवर्तन

कान्सडेन, गार्डेन एवं मार्टिन ने काँच के जिस लंबे प्याले का उपयोग किया, उसको बनाने में काफ़ी दक्षता की आवश्यकता होती है; नाजुक होने के कारण वह शीघ्र टूट भी जाता है। कुछ अनुसंधान-कर्ताओं (११) ने इसके बजाय स्टेनलेस स्टील के बने प्याले का उपयोग किया। इस कठिनाई को हल करने का दूसरा उपाय यह है कि विलायक के बहने की दिशा को बदल दिया जाये। विलियम्स एवं कर्बी (१२) ने यह दिखाया कि यदि छनने कागज की पट्टी को ऊपर से इस प्रकार लट-

काया जाये कि उसका एक छोर विलायक में डूबा रहे, तो विलायक “केश-नलिका-चढ़ाव” के कारण धीरे-धीरे ऊपर चढ़ता है। यद्यपि यह चढ़ाव कुछ समय (२४ से ४८ घण्टे) बाद रुक जाता है, तथापि यह इतने ऊपर अवश्य चढ़ जाता है जिससे एक संतोषजनक क्रोमैटोग्राम बन सके। इन वैज्ञानिकों ने यह भी सुझाव रखा कि कागज़ की स्ट्रिप को पात्र की पेंदी के अनुसार मोड़ कर उसको ऊपर से इस प्रकार लटकाया जा सकता है कि वह पात्र की दीवारों को न छुए। इस व्यवस्था में आरम्भ-रेखा, जिस पर परख-द्रव की बूंद रखी जाती है, विलायक की सतह से समांतर होती है। किन्तु यह विलायक की सतह से कुछ सेंटीमीटर दूर होती है और पात्र की ऊर्ध्वाधर दिशा में विलायक के साथ चलती है। विलियम्स एवं कर्बी ने यह भी ज्ञात किया कि विलायक-पात्र में सिलिंडर को सीधा खड़ा किया जा सकता है और वह साधारण रूप से प्रयोग के दौरान में नहीं गिरता। किन्तु लेखकों का मत है कि सुरक्षाके लिए सिलिंडर को किसी सुगम विधि से लटकाना ठीक होता है। यह भी ज्ञात किया गया कि केश-नलिका चढ़ाव की विधि से ज्ञात सांख्यिक मान कान्स-डेन, गार्डन एवं मार्टिन द्वारा ज्ञात सांख्यिक मानों के बराबर थे (देखिए परिशिष्ट क, पृ० १५१)।

कक्षा में इस विधि को बड़ी सरलता से किया जा सकता है। चित्र ६ में एक बड़ी क्वथन नली ली गयी है। इसके स्थान पर नपने गिलास को भी लिया जा सकता है। इसमें नीचे की ओर कुछ मिलीमीटर विलायक भर दिया जाता है। इसके ऊपर रबर की एक डाट कस दी जाती है। इस डाट के बीच में शीशे (काँच) की छड़ अथवा तार होता है और इसके सिरे पर कोई ऐसी कँटिया होती है जिससे कागज़ को सुगमता से लटकाया जा सके। स्ट्रिप के निचले सिरे की ओर आरम्भ-रेखा होती है। स्ट्रिप को इस भाँति लटकाया जाता है कि



चित्र ६—कक्षा में प्रदर्शन के लिए कागज़-क्रोमेटोग्राफीय विधि का सरल प्रयोग

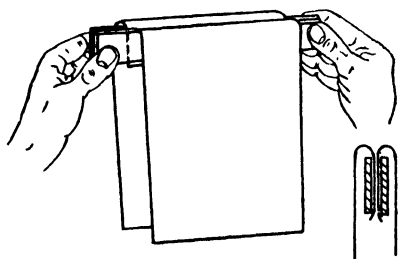
वह विलायक की सतह को छूने न पाये। इस प्रकार कागज की स्ट्रिप को थोड़ी ढेर रख दिया जाता है। ऐसा करने से कागज, जल और विलायक की वाष्पों से सन्तुलित हो जाता है। इसके बाद शीशे की छड़ अथवा तार को इतना नीचे खिसका दिया जाता है कि उसका निचला भाग विलायक में डूब कर क्रोमैटोग्राफीय विधि आरम्भ कर दे।

इस विधि के लिए अन्य विविध प्रकार के उपकरणों का उपयोग किया गया है। किसी भी उपकरण में कोई विशेषता नहीं है। किन्तु इन सब में यह बात आवश्यक है कि कागज के चारों ओर के वातावरण को पूरी तरह नियन्त्रित होना चाहिए। यदि पात्र में से विलायक की वाष्प को बाहर निकलने की थोड़ी भी गुंजाइश होती है तो पात्र में वातावरण सम नहीं रह पाता। अतः जो सांभ्र मान प्राप्त होते हैं वे ठीक नहीं होते। यदि प्रयोग करने के पहले कागज को विलायक से सन्तुलित न किया जाये तो भी प्रयोग-फल ठीक नहीं होते। अतः जर्मिन एवं आइशरउड (१३) ने नियन्त्रित ताप पर बड़ी सावधानी से प्रयोग किये। उन्होंने ऊपर रखे प्याले से कागज पर विलायक के नीचे दौड़ने की विधि का इस्तेमाल किया। ऊपर रखी शीशे की चट्टर में छेद करके इसे डाट से कस दिया गया। नीचे वाले पात्र में पहले पानी रखा गया और इस प्रकार उपकरण को जलीय फेज से सन्तुलित कर लिया गया। जब बारह घण्टे तक कागज जल से सन्तुलित हो गया तो डाट को खोल कर चट्टर के छेद में से पिपेट द्वारा विलायक डाला गया। वातावरण को सम रखने के हेतु डाट को शीघ्र ही लगा दिया गया।

हानेस एवं आइशरउड (१४) ने नियत ताप पर प्रयोग किये और इन वैज्ञानिकों ने भी ऊपर रखे प्याले से विलायक के नीचे दौड़ने की विधि का उपयोग किया। इन्होंने मुलायम लोहे की छड़ों (शीशे की छड़ में पिघला कर जोड़ी हुई) को क्रोमैटोग्राम के निचले सिरे पर लगा दिया। इससे कागज सीधा रहता था। इसका एक उपयोग और था। जब कागज सन्तुलित होते थे तो पात्र के चारों ओर एक छोटा चुम्बक धीरे-धीरे घुमाया जाता था। इससे कागज धीमे-धीमे हिलता था और इस प्रकार वातावरण को सम रखने के लिए पात्र के अन्दर कागजों का पंखा चल जाता था।

कागज के बड़े तावों ($16 \times 22\frac{1}{2}$ इंच) पर क्रोमैटोग्राम बनाने के लिए कान्सडेन, गार्डन एवं मार्टिन ने एक $30 \times 30 \times 4$ इंच के बड़े पात्र का उपयोग किया। इसके चारों ओर शीशे लगे हुए थे और इसके ऊपर ठीक से फिट होनेवाला

ढकना था, जिससे पात्र वायुरोधक^१ बन जाता था। पार्टिज (११) ने इसी प्रकार के स्टेनलेस स्टील के बड़े पात्र का उपयोग किया। बड़े तावों के ठीक से सँभालने की विधि चित्र ७ में दिखायी गयी है। दो बड़े तावों को दो लंबी शीशे की स्ट्रिपों से दबा दिया जाता है। ध्यान दीजिए कि कागज को शीशे की स्ट्रिप की चौड़ा



चित्र ७—कागज-क्रोमेटोग्राफी में दो बड़े तावों को सँभालने की विधि

से कुछ अधिक नीचे ले जाकर स्ट्रिप के दूसरी ओर मोड़ दिया गया है। ऐसा करने से लाभ यह होता है कि दूसरे ताव को बिना हिलाये हुए एक तावको बाहर निकाला जा सकता है। क्रोमेटोग्राम बनने के बाद कागज गिला हो जाता है और इस कारण वह स्ट्रिप से चिपक जाता है; अतः उस स्ट्रिप को, जिस पर कागज चिपका हुआ है, उठाने पर पूरा ताव उठ जाता है और तब उसको आसानी से बाहर निकाला जा सकता है। कागज को पकड़ने वाले “बुलडाग” क्लिपों को भी इस्तेमाल किया जा सकता है और इन क्लिपों की पकड़ने की शक्ति को धातु की पतली पत्तियों को लगाकर बढ़ाया जा सकता है।

जब एक ही प्रकार के कई क्रोमेटोग्रामों को साथ लगाने की आवश्यकता होती है, तो दत्त, डेण्ट एवं हैरिस (१५) द्वारा प्रयुक्त विधि का उपयोग किया जा सकता है। इन वैज्ञानिकों ने ड्युरैल्युमिन^२ के फ्रेम का उपयोग किया और इसमें २० × २० वर्ग सेंमी० वाले छनने कागज के १२ तावों को सुगमता से रखा। यह पूरा फ्रेम विलायक युक्त पात्र में खड़ा रहता है और केश-नलिका-चढ़ाव द्वारा कागजों में विलायक चढ़ता है। जब एक दिशा में एक विलायक की प्रक्रिया हो जाती है, तो कागजों को सुखाकर बिना फ्रेम में से निकाले दूसरे विलायक में रख दिया जाता है।

कागज

ह्वाटमैन नं० १ कागज का सबसे अधिक उपयोग किया जाता है। इसके

दूसरे नंबरों वाले कागजों पर भी प्रयोग किये गये हैं। किन्तु इन कागजों की रचना का क्रोमेटोग्राफीय विधि पर क्या प्रभाव पड़ता है, इस पर अभी पर्याप्त रूप से शोध-कार्य नहीं हुआ है। कान्सडेन, गार्डन एवं मार्टिन (७) ने बताया है कि ह्याटमैन नं० ४२ पर पृथक्करण तो संतोषजनक रूप से होता है, किन्तु घने होने के कारण इस पर विलायक के विसार की गति धीमी होती है। अतः इस पर प्रयोग-कार्य सुगम नहीं होता। मोटे कागजों पर प्रयोग विलयनों की बड़ी मात्राओं के पृथक्करण के लिए किये गये थे। ह्याटमैन “एक्सीलरेटर”^१ कागज (३½ इंच मोटे) पर पदार्थ संतोषजनक रूप से पृथक् होते हैं, किन्तु प्रयोग करने में यह भंग हो जाता है। ह्याटमैन “सीड टेस्टिंग”^२ (६½ इंच मोटे) कागज पर विसार सम नहीं होता।

बाल्सटन एवं टालबट (१६) ने ह्याटमैन कागजों का इस प्रकार वर्गीकरण किया—

तेज विसार	नं० ४, नं० १५ (मोटा कागज);
मध्यम विसार	नं० १, नं० ३ एम एम (मोटा कागज);
	नं० २९ (काला कागज);
मध्यम-धीमा विसार	नं० ११ (पतला कागज), नं० २; और
धीमा विसार	नं० २०।

एक दूसरी श्रेणी के मोटे कागजों पर भी प्रयोग किये गये; ये कागज दानेदार^३ थे और इनके रेशे कम घने थे। इन पर दोनों दिशाओं में विसार सम होता है। इस श्रेणी में ये कागज आते हैं—

मध्यम विसार	नं० ७, नं० १००, नं० ३ (मोटा कागज); और
अति धीमा विसार	नं० ५।

अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में पदार्थों के पृथक्करण के लिए कागज क्रोमेटोग्राफी में बूंदोंको बार-बार लगाया जाता है। एक बूंद के सूख जाने पर उसी पर दूसरी बूंद रख दी जाती है, अथवा पदार्थों को बूंद के बजाय पट्टी के रूप में कागज पर लगाया जाता है। इस कार्य के लिए ह्याटमैन नं० ३ कागज संतोषजनक है। इसकी ७ इंच चौड़ी स्ट्रिप पर लगभग ०.२ मिलीमीटर विलयन लगाया जा सकता है। यदि १ प्रतिशत विलयन लगाया गया है तो इस प्रकार लगभग २ मिलीग्राम विलय-

शील जाता है। यदि पृथक्करण कागजों की कई स्ट्रिप्सों पर किया जाये तो इस विधि से सूक्ष्म मात्रा में पदार्थों की तैयारी भी की जा सकती है।

कागज की अशुद्धताओं के कारण कुछ प्रयोगों में क्रोमैटोग्रामों पर भी प्रभाव पड़ता है। किन्तु यदि कागजों को प्रयोग के पहले धो लिया जाये, तो प्रक्रिया संतोषजनक रूप से होती है। ताँबे की उपस्थिति का पहले ही जिक्र किया जा चुका है। हानेस एवं आइशरउड (१४) ने जब फ्रास्फ़रिक एस्टरों को साधारण विलायकों द्वारा ह्वाटमैन नं० १ अथवा नं० ४ कागज पर पृथक् किया तो आरम्भ-रेखा पर एवं चलती हुई बूंद के पीछे-पीछे उनको एस्टरों के कुछ “अवास्तविक” धब्बे दिखाई दिये। बाज़ार में मिलने वाले ह्वाटमैन नं० ५४ और नं० ५४१ “अम्ल से धुले हुए” होते हैं। जब इन कागजों से प्रयोग किये गये तो इन पर भी ये “अवास्तविक” धब्बे दिखाई दिये, किन्तु ये नं० १ अथवा नं० ४ पर पाये गये अवास्तविक धब्बों की अपेक्षा काफी हलके थे। यदि किसी भी कागज को प्रयोगशाला में पहले तनु हाइड्रोक्लोरिक अम्ल और बाद में आसुत जल से धो लिया जाये तो इन कागजों पर प्राप्त क्रोमैटोग्रामों में कोई भी अवास्तविक धब्बे नहीं दिखते। और यदि अम्ल से धुले कागजों में इतना कैल्सियम अथवा मैग्नीशियम ऐसीटेट मिला दिया जाये कि इन कागजों की राख ह्वाटमैन नं० १ कागजों की राख के बराबर हो तब इन पर भी प्राप्त क्रोमैटोग्रामों में अवास्तविक धब्बे दिखाई देते हैं। इन के अतिरिक्त कभी-कभी कागजों पर धब्बों की “छाया” भी दिखाई पड़ती है। ये साधारणतया इन चारों प्रकार के कागजों में पायी जाती हैं। ये “छाया” धब्बे तनु हाइड्रोक्लोरिक अम्ल से धुले कागजों पर भी पाये जाते हैं। लेखकों का विश्वास है कि कागजों पर यदि ८-हाइड्राक्सी-क्वीनोलीन अथवा हाइड्रोजन सल्फ़ाइड की प्रक्रिया की जाये तो ये “छाया” धब्बे निकल जाते हैं, क्योंकि ये भारी धातुओं के कारण होते हैं।

जब अधिक संख्या में कागजों को धोना हो, तो चित्र ८ में दिखाये गये उपकरण का सुगमता से प्रयोग किया जा सकता है। यह उपकरण पर्सपेक्स प्याला है जिसकी अन्दर से नाप १२×१२×१ इंच होती है; यह एक इंच गहरा होता है। इस लंबे प्याले की पेंदी पर १ इंच चौड़ा छेद बना लिया जाता है; इस छेद की

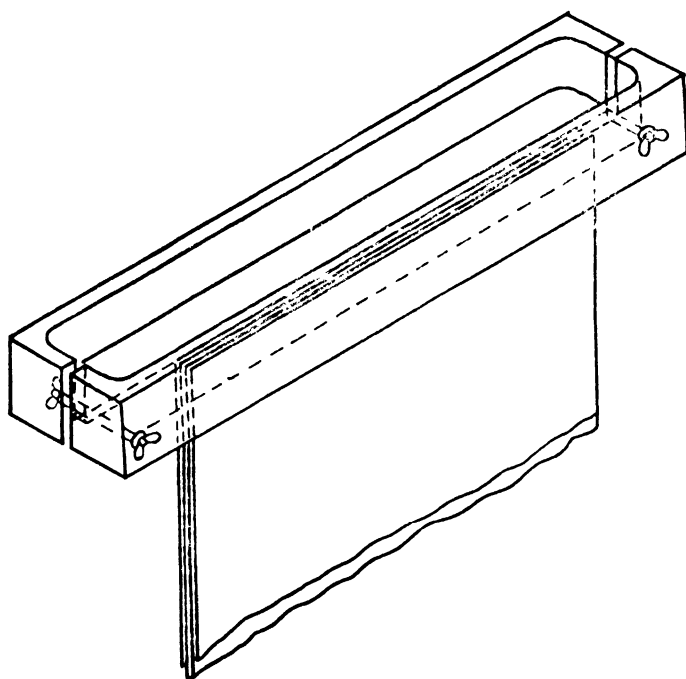
1. “Ghost” spots

2. Dilute

3. Shadows to the spots

4. Perspox trough

लम्बाई उतनी ही होती है जिसमें से ह्याटमैन नं० १ कागज का ताव नीचे लटक सके। मशीन द्वारा इस प्याले के दो लम्बे टुकड़े कर लिये जाते हैं। इन दोनों टुकड़ों को पेंच से कसा जाने पर उपकरण जल-रोधक होना चाहिए। पेंचदार कील को कसने के लिए चपटी ढिबरी होनी चाहिए।



चित्र ८—कागज के अनेक तावों को एक साथ धोने का उपकरण (देखिए—पठनीय सामग्री - उल्लेख सं० २८, आइशरउड एवं हानेस के आधार पर)

जब इस उपकरण का उपयोग किया जाता है तो इसके दो अर्द्ध-भागों को थोड़ा खोल लिया जाता है। तब इसमें 60° कागजों के तावों को बीच में रख कर चपटी ढिबरी से कस कर दबा दिया जाता है। ऐसा करने पर प्याले की पेंदी का छेद ढक जाता है। अब प्याले में धोने वाला द्रव भर दिया जाता है और इसके ऊपर धोने वाले द्रव से भरे बड़े फ्लास्क को औंधा दिया जाता है। ऐसा करने से

द्रव की सतह उतनी की उतनी बनी रहती है। सम्पूर्ण उपकरण को इस प्रकार लटका दिया जाता है जिसमें नीचे टपकने वाला द्रव एकत्रित होकर नाली में से निकल सके।

कागज़ की रचना सदैव एक प्रकार की नहीं होती। इसके कारण दोनों दिशाओं में विलायकों की गति प्रायः एक समान नहीं होती। छनने कागज़ के गुण-धर्मों के सम्बन्ध में अधिक जानकारी के लिए उस पुस्तक (१६) को पढ़ना चाहिए जिसका जिक्र किया जा चुका है।

विलायक

विलायकों का चयन पृथक् किये जा सकने वाले पदार्थों पर निर्भर होता है। परिशिष्ट (क) में अनेक विलायकों का वर्णन किया गया है, किन्तु कुछ मुख्य बातें यहाँ बतायी जा रही हैं। विलायक को साधारणतया पृथक्करण कीप^१ में मिलाया जाता है जिससे जलीय-फ़ेज़ और विलायक से संतृप्त फ़ेज़ एक समय में ही बन जायें। कुछ विलायकों के मिश्रण पर ताप का काफी प्रभाव पड़ता है, उदाहरणतया ब्यूटेनल-जल-ऐसीटिक अम्ल। यदि ऐलकोहलों और अम्लों के मिश्रण बनाये जायें तो कभी-कभी एस्टर बन जाते हैं और उनमें से जल निकलने लगता है। साधारणतया, विलायकों को प्रयोग के एक दिन पहले बना लेना चाहिए। विलायकों को सावधानी से रखना चाहिए। इनमें से कुछ में दुर्गंध होती है; एक अप्रिय और कुछ हानिकर भी होते हैं। अतः क्रोमैटोग्राफीय विधि को धूम-रोधक स्थान^२ में करना चाहिए जिससे विलायक के वाष्प कमरे की हवा से न मिल सकें। यदि ऐसा प्रबन्ध न हो सके, तो पंखों का प्रयोग करना चाहिए और कमरे के सारे रोशनदान खोल देने चाहिए। जिन विलयशीलों का आयनीकरण^३ हो जाता है उनको सावधानी से उपयुक्त करना चाहिए। उदाहरणतया, पौधे के हाइड्राक्सी अम्लों के लिए फ़ार्मिक अम्ल उपयुक्त ब्यूटेनल का उपयोग करना चाहिए; इससे आयनीकरण कम हो जाता है और क्रोमैटोग्रामा धब्बे गोल बनते हैं। यदि विलायक में पर्याप्त रूप से अम्ल न हो और विलयशीलों का आयनीकरण होने लगा हो

1. Separating funnel
3. Ionization

2. Fume-Cupboard

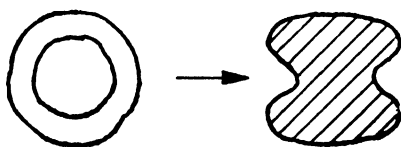
तो गोल धब्बों के स्थान पर विलयशीलों की लकीरें-सी^१ बन जाती हैं। यदि विलायक क्षारीय हो, तो भी लवण बनने के कारण ऐसा होने लगता है। विलियम्स एवं कर्बी (१२) ने ज्ञात किया कि भास्मिक अमीनो-अम्ल (हिस्टीडीन, लाइसीन अर्जिनिन) आइसोव्यूटिरिक अम्ल के साथ विसारित लकीरें बनाते हैं। यदि इन अमीनो-अम्लों के साथ फ्रीनोल-अमोनिया विलायक का उपयोग किया जाये तो ये भस्मों की भाँति प्रक्रिया करके अच्छे क्रोमैटोग्राम बनाते हैं। और यदि ब्यूटेनॉल ऐसिटिक अम्ल विलायक का प्रयोग किया जाये तो ये लवण की भाँति प्रक्रिया करके अच्छे क्रोमैटोग्राम बनाते हैं। लैडउ एवं उसके साथियों (१७) तथा मैक्समोरन (१८) ने अमीनो-अम्ल के संच्र मानों पर प्रतिरोध क्रिया के प्रभाव का वर्णन किया है।

परख-द्रव के लगाने की विधि

पदार्थों को पहचानने की साधारण विधि यह है कि शीशे की केश-नलिका में परख-द्रव भर लिया जाये और उसके सिरे को आरम्भ-रेखा पर छुआ दिया जाये। यह केश-नलिका केवल उतनी देर तक कागज को छूती है जब तक कागज पर इतना द्रव नहीं आ जाता जिससे एक सेंटीमीटर व्यास वाली बूँद बन जाये। तब केश-नलिका को हटा लिया जाता है। इसे या तो फेंक दिया जाता है या धोकर फिर से उपयोग में लाया जाता है। इस कार्य के लिए गलनांक^२ निकालने वाली नलिकाओं का उपयोग किया जा सकता है; किन्तु ये कुछ चौड़ी होती हैं। अच्छा यही है कि प्रयोगशाला में बेकार पड़ी काँच की अनेक नलिकाओं को पिघला करके खींच लिया जाये और उनकी केश-नलिकाएँ बना ली जायें। इन केश-नलिकाओं को तेज चाकू से काटना चाहिए जिससे इनके किनारे साफ हों। सुविधानुसार २ से ४ इंच तक लंबी काटी जा सकती है।

एक या दो मिनट में परख-द्रव की बूँद सूख जाती है। यह छोटी होनी चाहिए और इसका सांद्रण कम होना चाहिए। ऐसा करने से क्रोमैटोग्राम अच्छा बनता है। जैसे-जैसे विलायक ऊपर चढ़ता है, ये बूँदें फैल कर छोटी बूँदों में टूटती जाती हैं। जितनी अधिक ये फैलेंगी, उतनी ही देर तक कागज को विलायक में रखना होगा।

एक नन्हीं-सी बूंद की अपेक्षा बड़ी बूंद में पदार्थ की मात्रा सौ गुनी तक हो सकती है। यदि बूंद बहुत छोटी है तो सम्भव है कि कोई भी क्रोमैटोग्राम न बने। बड़ी बूंद में यदि पदार्थ अधिक सांद्रण में है तो कदाचित् यह पूर्ण रूप से घुल न पाये और इस कारण धब्बे के पीछे लकीरें दिखाई दे सकती हैं। कभी-कभी धब्बा गोल होने के बजाय “कमरयुक्त” बन जाता है। ऐसा लगता है जैसे यह दो धब्बों में टूटने वाला हो। इसका कारण यह है कि मूल बूंद पहले सूख जाती है और तब केन्द्र के बजाय बूंद के किनारों पर विलयशील का सांद्रण अधिक हो जाता है (देखिए—चित्र ९)। बूंद में विलयशील की मात्रा को सम रखने के लिए बूंद छोटी लगानी चाहिए। कभी-कभी कागज को बदलने पर भी “कमरयुक्त” धब्बे बनना बन्द हो जाते हैं।



चित्र ९—क्रोमैटोग्राम के कमरयुक्त धब्बे

कागज पर कम अथवा अधिक मात्रा में लकीरों के पड़ने के कई कारण हो सकते हैं—कागज पर तेज शोषण, कागज की अशुद्धता के साथ विलयशील की प्रक्रिया, विलयशील का एक से अधिक आणविक^१ अवस्था में रह सकने की संभावना आदि। अन्तिम दशा के भी कई कारण हो सकते हैं—बहुत अधिक सांद्रण, आंशिक आयनीकरण चलावयता^३ आदि।

जोन्स (For. Soc. Discussions, .पृ० २८९) ने कहा है कि वह साधारणतया व्हाटमैन नं० ७ कागज को पसन्द करते हैं, क्योंकि इस पर अमीनो-अम्लों के गोल धब्बे बनते हैं। कागज क्रोमैटोग्राफी की परिमाणात्मक^४ विधियों के वर्णन के समय बूंदों के आकार और शकल की विस्तारपूर्वक चर्चा की जायेगी।

1. “Waisted”

3. Tautomerism

2. Molecular

4. Quantitative

क्रोमेटोग्राम का सुखाना

विलयशीलों और उपयुक्त फव्वारों (सिचन-नलिकाओं)^१ के अनुसार क्रोमेटोग्राम को विविध विधियों से सुखाया जाता है। कान्सडेन, गार्डन एवं मार्टिन ने ११०° पर क्रोमेटोग्राम को सुखाया, सूखने पर क्रोमेटोग्राम को ८०° पर पाँच मिनट तक रखा गया। इससे निनहाइड्रिन प्रतिक्रिया पूर्ण होकर ठीक से रंग बना देती है। पार्टिज (११) ने सुखाने के लिए एक विशेष प्रकार का ऊष्मक^२ बनाया। इसमें एक अपकेन्द्रीय^३ पंखा लगा रहता था। वैद्युत हीटरों के ऊपर से होकर इसके द्वारा ऊष्मक में हवा आती थी और फ्लू पर से होकर बाहर निकलती थी। इस ऊष्मक का ताप १०५° रहता था। आल्बन एवं ग्रास (Analyst, ७७, ४०६, १९५२) ने एक ऐसे ऊष्मक का वर्णन किया है जिसमें ताप सम रहता है। नोवेली (१९) ने यह सिद्ध कर दिया है कि १००° तक अमीनो-अम्लों का विच्छेदन^४ गौण होता है। किन्तु इसके ऊपर के तापों पर यह गंभीर हो जाता है। पहचानात्मक^५ विधि में यदि अधिक ताप के कारण कुछ पदार्थ नष्ट भी हो जाये तो इससे कोई विशेष हानि नहीं होती। किन्तु परिमाणात्मक विधियों में उपयुक्त ताप का रहना आवश्यक होता है। यदि ताप को घटा दिया जाये तो ऊष्मक में क्रोमेटोग्रामों के रखने की अवधि बढ़ानी पड़ती है। कुछ शोध-कर्ताओं ने क्रोमेटोग्रामों को निर्वात^६ में सुखाने पर प्रयोग किये हैं। कुछ वैज्ञानिक क्रोमेटोग्रामों को निम्न वाष्पशीलता वाले द्रव से धो देते हैं। इसके लिए पेट्रोलियम ईथर अथवा ऐसे द्रव का उपयोग किया जाता है जो विलयशील को कागज में से न धो दे। द्वि-आयामी क्रोमेटोग्रामों में सुखाने की विधि पर विशेष ध्यान देना चाहिए, अन्यथा एक विलायक की थोड़ी-सी भी मात्रा रह जाने पर दूसरे विलायक की प्रक्रिया पर गम्भीर असर पड़ सकता है।

फव्वारे^७

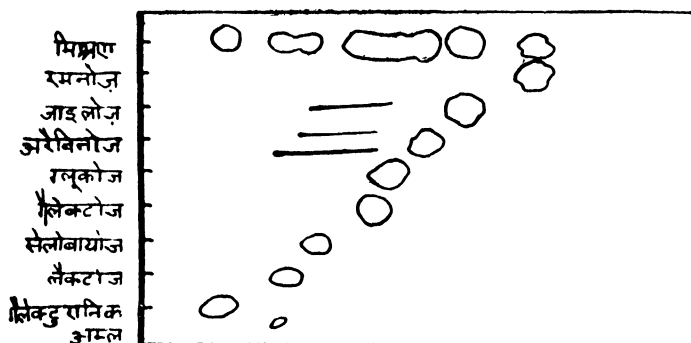
साधारणतया धूम-कक्ष में क्रोमेटोग्राम पर फव्वारा या सिचन-नली चलाना

- | | | |
|------------------|----------------|----------------|
| 1. Sprays | 2. Drying oven | 3. Centrifugal |
| 4. Decomposition | 5. Qualitative | 6. Vacuum |
| 7. Sprays | | |

चाहिए। कागज के पीछे थोड़ी रोशनी भी रहनी चाहिए। ऐसा करने से कागज के गीले होने की प्रक्रिया सरलता से देखी जा सकती है। यदि कोई स्थान सूखा न रह जाये तो सम्भव है कि उसी स्थान पर विलयशील हो और इस प्रकार धब्बा पूर्ण रूप से प्रस्फुटित न हो सके। और यदि फव्वारे से अधिक द्रव को कागज पर छोड़ दिया गया है तो धब्बे धीमे पड़ सकते हैं; उनकी जगह भी बदल सकती है। कभी-कभी फव्वारे के स्थान पर अन्य विधियों का भी उपयोग किया जाता है। उचित स्थानों पर उनका वर्णन किया जायेगा।

कागज क्रोमैटोग्राफी द्वारा पृथक् हो सकने वाले यौगिकों के वर्ग

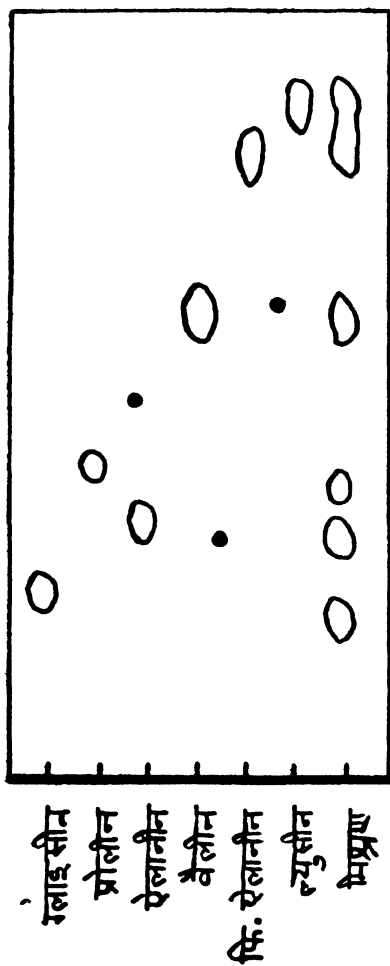
चित्र १० में कुछ वास्तविक क्रोमैटोग्राम के चित्र दिखाये गये हैं। परिशिष्ट क में कुछ यौगिकों की तालिका दी गयी है। इनके साथ प्रयुक्त विलायक, फव्वारे में प्रयुक्त द्रव और साश्च मान भी दिये गये हैं। ये तालिकाएँ विस्तृत नहीं हैं। वस्तुतः, प्रतिदिन नवीन शोध-कार्य हो रहे हैं और प्रत्येक मास क्रोमैटोग्राफी द्वारा पृथक् किये जा सकने वाले पदार्थों की संख्या बढ़ती जा रही है। बाल्सटन एवं टाल्वट ने पृथक् हो सकने वाले यौगिकों का वर्णन किया है।



विलायक: एथिल ऐसीटेट / पिरिडीन / जल २:१:२
फव्वारा: अमोनियामुक्त सिल्वर नाइट्रेट।

चित्र १० 'क'—कागज-क्रोमैटोग्रामों के चित्र

शोध-निबन्ध में दिये साश्च मानों में प्रयोग करने पर थोड़े अन्तर पाये जा सकते हैं। किन्तु एक ही वर्ग के यौगिकों के पृथक् होने का क्रम वही रहना चाहिए।



विलायक : n - प्रोपेनाल / जल ८० : २०

फव्वारा : निनहाइड्रिन ।

चित्र १० 'ख'—कागज—क्रोमेटोग्रामों के चित्र

अध्याय ३

कागज़-क्रोमैटोग्राफी के उपयोग

स्पष्ट रूप से कागज़ क्रोमैटोग्राफी का सबसे पहला उपयोग यह है कि पृथक् हुए पदार्थों का परिमाणात्मक परिमाणन किया जाये। इसके लिए कई विधियाँ प्रचलित हैं—प्रस्फुटित धब्बे के क्षेत्रफल की गणना, अधिकतम रंग घनत्व की माप, धब्बों का कर्त्तन^१ और उनका सूक्ष्म-रासायनिक^२ परिमाणन, तथा धब्बे का निष्कासन और उसके बाद सूक्ष्म-रासायनिक परिमाणन।

धब्बे के क्षेत्रफल का माप

फ़िशर, पार्सन्स एवं मारिसन (२०) ने एक प्रायोगिक नियम को ज्ञात किया। इसको इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है—यदि एक प्रकार के क्रोमैटोग्रामों में एक ही पदार्थ की विभिन्न सांद्रण वाली बूंदों को लगाया जाये तो धब्बों के क्षेत्रफल आरम्भिक सांद्रण के लागौरिथ्म से सीधे समानुपाती होते हैं। ब्रिम्ले (२१) ने यह स्थापित किया कि इस नियम को विसार^३ के गणित सिद्धान्त से निकाला जा सकता है ; इसमें यह मानना पड़ता है कि बूंद कागज़ पर विसार के कारण फैलती है।

जब इस विधि से किसी पदार्थ के सांद्रण का परिमाणन किया जाता है तो उसी क्रोमैटोग्राम पर शुद्ध पदार्थ के ज्ञात सांद्रण वाले विलयन की दो और बूंदें रख दी जाती हैं। एक बूंद कम सांद्रण वाली होती है और दूसरी अधिक सांद्रण वाली। जब ये बूंदें उसी क्रोमैटोग्राम पर धब्बे बनाती हैं, तो उनके क्षेत्रफल ज्ञात कर लिये जाते हैं। इन क्षेत्रफलों के लागौरिथ्म और धब्बों के सांद्रण के ग्राफ़ खींच लिये

1. Colour density
2. Excision
3. Micro chemical
4. Difusion

जाते हैं। सीधे समानुपाती होने के कारण ज्ञात सांद्रणों वाले दो बिंदुओं से सीधी रेखा प्राप्त होती है। साधारण रूप से केवल दो सांद्रणों को लेकर यह रेखा-बनायी जा सकती है, किन्तु ठीक परिमाण के लिए कई सांद्रणों वाले विलयनों को लेकर यह ग्राफ-रेखा बनानी चाहिए। बूंदों को एक साथ आरम्भ-रेखा में रख देना चाहिए और इन सबको एक ही व्यास का होना चाहिए। अच्छा यही है कि इनका व्यास ५ मिलीमीटर से अधिक न हो। प्रस्फुटित धब्बों के क्षेत्रफल को 'प्लेनीमीटर' से मापा जा सकता है, या उनके ऊपर पतले कागज (जिनपर छोटे-छोटे वर्ग बने होते हैं) को रखकर उनका क्षेत्रफल ज्ञात किया जा सकता है। धब्बों को काटकर तौला भी जा सकता है। क्षेत्रफल मापने के पहले धब्बों के चारों ओर पेसिल से रूप-रेखा बना लेनी चाहिए। यह कार्य सरल नहीं है क्योंकि धब्बों की यथार्थ रूप-रेखा को निश्चित करने में प्रत्येक शोध-कर्ता का मत भिन्न हो सकता है। इस प्रकार से जो त्रुटि होती है उसको कम करने के लिए धब्बों के रिफ्लेक्स प्रिंट^३ बनाये जा सकते हैं। इन प्रिंटों में धब्बों के किनारे अधिक स्पष्ट हो जाते हैं।

इस कार्य का आरम्भ करने वालों फ्रोमागियो एवं दे गारिल्हे (२२) का विश्वास है कि इस विधि से काफ़ी संतोषजनक परिमाणन किये जा सकते हैं। इस विधि का महत्व तब बढ़ जाता है जब अन्य सूक्ष्म-रासायनिक विधि कठिन हो अथवा मालूम ही न हों।

रंग घनत्व के माप से परिमाणन^३

बुल, हान और बैप्टिस्ट (२३) ने अमीनो-अम्लों की निनहाइड्रिन से प्रक्रिया पर कार्य किया है। इन्होंने धब्बे के रंग में अंतरों को मापा और इनसे घनत्व-वक्र बनाया। यदि यह मान लिया जाये कि इस वक्र पर के किसी बिंदु से प्रतिक्रिया करने वाले किसी अमीनो-अम्ल के रंग-घनत्व समानुपाती होते हैं और यहाँ पर बियर का नियम^४ लागू होता है, तो बनाये गये वक्र का क्षेत्रफल प्रक्रिया करने वाली बूंद में पदार्थ की मात्रा से समानुपाती होना चाहिए। इन वैज्ञानिकों ने यह ज्ञात किया कि यह बात करीब-करीब सही थी। यदि इस वक्र के आधार पर रंग-

1. Planimeter

2. Reflex print

3. Estimation

4. Beer's Law

घनत्व द्वारा परिमाणात्मक परिमापन किया जाये तो स्टैंडर्ड त्रुटि ८.८ प्रतिशत होती है।

टाम्पसन और उनके साथियों (२४, २५) ने परिमाणात्मक क्रोमेटोग्राफीय विधि में त्रुटियों के कुछ कारणों का अन्वेषण किया है। उन्होंने निनहाइड्रिन के धब्बे को काट लिया और उसके सार के रंग को रंग-मापी^१ विधि से ज्ञात किया। पता चला कि इस प्रकार अधिकतर अमीनों-अम्लों की ९५ प्रतिशत मात्रा निकल जाती थी।

यदि मूल बिंदु विसार द्वारा फैलता है तो धब्बे का अधिकतम रंग-घनत्व मूल रूप से रखे गये अमीनों-अम्लों की मात्रा से समानुपाती होना चाहिए। ब्लाक (२६) ने निनहाइड्रिन रंग के प्रयोग से ज्ञात किया कि यह समानुपाती नियम ठीक नहीं है। मैक्फारेन, ब्रांड एवं हटकाउस्की (२७) ने शर्कराओं के लिए अमोनिया युक्त सिल्वर नाइट्रेट का उपयोग किया, और ज्ञात किया कि अधिकतम रंग-घनत्व सांद्रण के लागौरिथ्म से समानुपाती होता है।

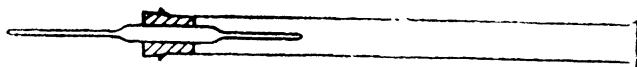
ज्ञात सांद्रणों वाले विलयनों को लेकर अंकन-वक्र^२ प्राप्त किये जा सकते हैं और इनसे परिमापन (आकलन) हो सकता है। यह आवश्यक नहीं कि ये वक्र किसी नियम के अनुसार हों। नियम के अनुसार न होने के कई कारण हो सकते हैं—एक निर्धारित बिंदु (एक निश्चित क्षेत्रफल नहीं) पर रंग-घनत्व के मापन में कठिनाई, निनहाइड्रिन के रंग में अन्तर, और अपूर्ण प्रतिक्रिया की संभावना। अंतिम कठिनाई का एक उदाहरण दिया जा सकता है—अमीनों-अम्लों के मिश्रण के द्वि-आयामी क्रोमेटोग्राम पर निनहाइड्रिन के ऐसे हलके विलयन की प्रक्रिया हो सकती है जिससे प्रस्फुटन पूर्ण हो और धब्बों को तो पहचाना जा सके; किन्तु, ये धब्बे इतने हलके हो सकते हैं कि उनका कर्तन संभव न हो या कुछ अमीनो-अम्ल बिना प्रतिक्रिया के ही रह गये हों—अतः इनका पूर्ण निष्कासन नहीं होता।

कर्त्तित^३ धब्बे का सूक्ष्म-रासायनिक परिमापन

सूक्ष्म-रासायनिक विधियों का विस्तृत विवेचन अन्य पुस्तकों में मिलेगा। यहाँ पर केवल कर्त्तित धब्बों में उनके उपयोग का वर्णन किया जा रहा है।

सबसे पहले तो बिना परख-द्रव को कागज पर लगाये “सादे” प्रयोग करने चाहिए। इनसे यह ज्ञात हो जाता है कि कागज अथवा विलायक में ऐसे कोई पदार्थ तो नहीं हैं जो प्रयोग-फलों को प्रभावित करें। यह ध्यान रखना चाहिए कि एक ही नम्बर के कागज के विविध नमूने और उनके विभिन्न ढेरों के गुण-धर्मों में भी अन्तर हो सकता है।

यह जानना आवश्यक है कि द्रव की कितनी मात्रा आरंभ-रेखा पर लगायी गयी है। इस के लिए सूक्ष्म-पिपेट^१ की आवश्यकता होती है। प्रयोगशाला में सुगमता से बनायी जा सकने वाली ऐसी पिपेट (२८) चित्र ११ में दिखायी गयी है।



चित्र ११—सरल सूक्ष्म-पिपेट (देखिए—पठनीय सामग्री-उल्लेख सं० २८, आइशरउड एवं हानेस के आधार पर)

इस पिपेट का मुख्य भाग मोटी दीवार वाली केश-नलिका है। इसके दोनों सिरों को नुकीला बना लिया गया है। केश-नलिका की लम्बाई लगभग १.५ सेंमी. होती है। ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि इसमें १-६ माइक्रोलिटर तक द्रव भरा जा सके, क्योंकि प्रयोगानुसार लगभग इतने ही द्रव को लगाने की आवश्यकता पड़ती है। इस केश-नलिका को शीशे की एक चौड़ी (लगभग १ इंच व्यास वाली और ४-६ इंच लंबी) नली से जोड़ दिया जाता है; यह बीच में फूली हुई होती है। ऐसी पिपेट को बनाना कठिन नहीं है। जब इसका प्रयोग करना हो तो इसके निचले सिर को परख-द्रव में डुबोया जाता है। ऐसा करने पर द्रव तुरन्त ही केश-नलिका में भर जाता है। इसके अंकन^१ के लिए तोलन-बोतल में छनना कागज रख लिया जाता है; विभिन्न ऊंचान तक द्रव भर कर इसे कागज से छुआया जाता है। द्रव सोखने के बाद बोतल को तौल लिया जाता है। इस तौल में से केवल तोलन-बोतल और छनने कागज का भार घटाने पर द्रव का भार ज्ञात हो जाता है और इससे उसके आयतन की गणना कर ली जाती है।

निष्कासित पदार्थों का सूक्ष्म-रासायनिक परिमापन

शर्करा (२९) पर किये गये प्रयोगों का उदाहरण स्वरूप यहाँ वर्णन किया जायेगा। इन वैज्ञानिकों ने आरम्भ-रेखा पर ३ सेंमी. दूर-दूर कई बूंदें रखीं। सूक्ष्म पिपेट के प्रयोग से ४.०५ माइक्रोलिटर द्रव लगाया गया। बयुटेनाल-ऐसिटिक अम्ल-जल विलायक को क्रोमेटोग्राम पर दौड़ाया गया। जब पृथक्करण हो गया तो क्रोमेटोग्राम को (निर्वात में) सुखा लिया गया। धब्बों की पहचान के लिए अमोनिया युक्त सिल्वर नाइट्रेट का उपयोग किया गया। आरम्भ-रेखा से जो धब्बे सबसे नज़दीक थे उनकी स्ट्रिप्स काट ली गयीं। इन स्ट्रिप्सों को गाइड मानकर 0.5×3 सेंमी. की स्ट्रिप्स उसी विधि से काटी गयी जिसका पृ० १२ एवं २२, २३ वर्णन किया जा चुका है। इनका एक सिरा काट कर नुकीला बना लिया गया (इसमें शर्करा के धब्बे लगभग १ सेंमी. ऊपर रहते थे) सादी पट्टियाँ भी काटी गयीं और उन पर भी ऐसी ही प्रक्रिया की गयी।

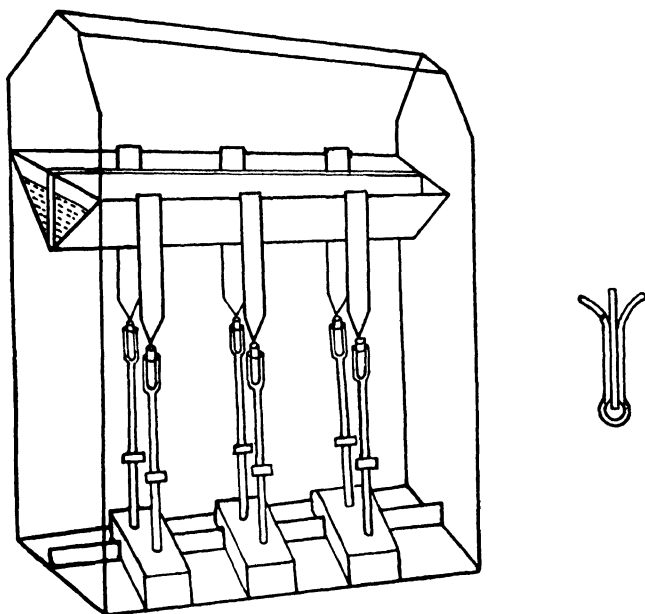
साक्सल्लेट धारित्र में इन स्ट्रिप्सों को रखा गया और शुष्क (अजलीय) ईथर (पेट्रोलियम ईथर; क्वथनांक, $60-60^\circ$ आदि) ज़ाईलोज़ उपस्थित है) द्वारा स्ट्रिप्सों को विलायक से मुक्त कर लिया गया। तब शर्करा को स्ट्रिप्सों (पट्टियों) में से इसी विधि से पृथक् किया गया, किन्तु इस बार जल को विलायक रूप में प्रयुक्त किया गया। एक बड़ी सूक्ष्म पिपेट को स्ट्रिप के नुकीले सिरे पर लगा दिया गया। शर्करा-विलय की बूंदें स्ट्रिप में नीचे आती गयीं और पिपेट में एकत्रित होती गयीं। प्रत्येक स्ट्रिप में से प्राप्त विलयन को (लगभग ०.३—०.४ मिलीलीटर) को एक छोटे प्याले में रख लिया गया। यह प्याला पैराफीन मोम के टुकड़े को खोद कर बनाया गया था। तत्पश्चात् फ़ास्फ़ोरस पेंटाक्साइड के ऊपर मोम के टुकड़े को रख कर जल सोख लिया गया।

शर्कराओं के सूक्ष्म-रासायनिक परिमापन (प्राक्कलन) के लिए अन्य बातों को मूल शोध-निबंध से जाना जा सकता है। उस निबंध में जो संख्याएँ दी गयी हैं उनसे पता चलता है कि शर्कराओं—ग्लूकोज, लैक्टोज़, गैलेक्टोज़, माल्टोज़, मैनोज़ और ज़ाइलोज़—के किन्हीं मिश्रित द्रव्यों का परिमापन ५ प्रतिशत यथार्थता से हो सकता है; इन प्रयोगों में प्रत्येक शर्करा की मात्रा केवल ४० माइक्रोग्राम थी।

1. Mixed pairs

हस्ट और उनके साथियों ने इसी प्रकार की विधियों का वर्णन किया है। ये विधियाँ स्वतन्त्र रूप से निकाली गयी थीं। इनमें ०.१ से १.० मिलीग्राम तक शर्करा ली जाती है, इनके मिश्रण के पृथक्करण और परिमापन में केवल + २ प्रतिशत की त्रुटि होती है (J. Chem. Soc., १९४८, १६७९; एवं १९४९, ९२८ और १६५९)।

जब ऐसे अनेक परिमापन करना हों तो स्ट्रिप्सों में से धब्बों के निष्कासन के लिए उपयुक्त उपकरण का प्रयोग करना चाहिए। चित्र १२ में ऐसा ही एक उपकरण (२८) दिखाया गया है। शीशे की छड़ को खींच कर बनाया गया एक क्लिप दायीं



चित्र १२—निष्कासन-उपकरण। इसमें कई पट्टियों का एक साथ निष्कासन किया जाता है। (देखिए—पठनीय सामग्री - उल्लेख सं० २८, आइशर उड एवं हानेस के आधार पर)

ओर दिखाया गया है। यह विलायक की बूंदों को ठीक दिशा में एकत्र करने में सहायता देता है। पर्सपेक्स (अथवा अन्य उपयुक्त प्लास्टिक) के बने लम्बे प्याले

में निष्कासक द्रव को भर लिया जाता है। कागज की स्ट्रिप्सों के चौकोर (जो नुकीला नहीं है) सिरों को इस प्याले में डूबो कर शीशे की स्ट्रिप से दबा दिया जाता है। नुकीले सिरों पर शीशे के क्लिप को लगा दिया जाता है और उसके नीचे टपकते हुए द्रव को एकत्र करने के लिए परख-नली अथवा उपयुक्त पात्र को रख दिया जाता है।

सरल उपयोग

कागज-क्रोमैटोग्राफी के सबसे सरल उपयोग वे हैं जिनमें अन्य परख विधियों के साथ-साथ इस विधि का पदार्थों के पहचानने अथवा लक्षण-निर्धारण में उपयोग किया जाता है। यहाँ पर ऐसे कुछ उदाहरण दिये जा रहे हैं।

डेंट और उनके साथियों ने रोगियों के दैनिक मूत्रों और रक्त के नमूनों का विस्तृत अध्ययन किया है। डेंट (३०) ने लगभग साठ अमीनो-अम्लों एवं निनहाइड्रिन से प्रतिक्रिया करने वाले अन्य यौगिकों की जो साधारणतया जीव-द्रवों^१ में पाये जाते हैं, क्रोमैटोग्राफी का अध्ययन किया है। आपने (३१) ऐल्फा-अमीनो अम्लों को निनहाइड्रिन से प्रतिक्रिया करने वाले अन्य पदार्थों (३२) से बड़ी सरल विधि द्वारा पृथक् करके पहचाना। कागज के ताव पर परख-द्रव की बूंदों को रखने के बाद कापर-कार्बोनेट का बारीक चूर्ण बुरका दिया गया। क्योंकि यह मालूम है कि ऐल्फा-अमीनो-कार्बाक्सिल की रचना वाले अमीनो-अम्ल तावे से संकुल^३ बना लेते हैं। प्रयोग करने के लिए दो क्रोमैटोग्राम लिये गये। उनमें से एक पर कापर-कार्बोनेट बुरका गया और दूसरे पर नहीं। आरम्भ-रेखा पर इन अमीनो-अम्लों टाउरीन, गामा-अमीनो-ब्युटिरिक अम्ल, सिस्टीक, ग्लाइसीन, टायरोसीन, ल्युसीन, वैलीन और एलानीन—की ५ माइक्रोलिटर की बूंदें (M/०००) रखी गयीं। जिस कागज पर कापर कार्बोनेट बुरका गया था, उसके क्रोमैटोग्राम में केवल टाउरीन और गामा-अमीनो ब्युटिरिक अम्ल के धब्बे दिखाई दिये।

डेंट और उनके साथियों (३२) ने मानव-मूत्र के कागज-क्रोमैटोग्रामों में एक विशेष धब्बे का पता लगाया और इसको “I-धब्बा” कहा। यह एक ऐसे अज्ञात यौगिक का धब्बा था जो निनहाइड्रिन से प्रतिक्रिया करता है। स्वस्थ लोगों में से

कुछ के पेशाब में यह यौगिक अधिक मात्रा में आने लगता है, पर इन लोगों के रक्त में इस यौगिक की मात्रा साधारण स्तर पर ही होती है। अनुमान लगाया गया कि कदाचित् यह उनके असाधारण वृक्क के कारण है ; उनके वृक्क की यह असाधारणता जीवन-पर्यंत रहती है। आयन-विनिमय स्तम्भों (जिनका इस पुस्तक में बाद में वर्णन किया जायेगा) के उपयोग से इस उपपदार्थ की थोड़ी मात्रा तैयार की गयी। ऐसा करने पर उसके पहचानने में सुगमता हुई। बाद में यह निश्चित हुआ कि इस पदार्थ में कार्बन के चार परमाणु हैं और यह कोई मानो-अमीनो, मानो कार्बाक्सिलिक अमीनो-अम्ल है। इसके आठ समावयव हो सकते थे। क्रोमैटोग्राम पर इनके धब्बों से यह निश्चित किया गया कि ७ समावयव इस प्रकार का धब्बा नहीं बनाते। जो समावयव वचा, वह बीटा-अमीनों-आइसोब्युटिरिक अम्ल (एल्फा-मैथिल-बीटा-ऐलानीन) था। अंततोगत्वा, यह निर्धारित हुआ कि इस यौगिक के कारण ही कागज पर "I-धब्बा" बनता था।

कागज-क्रोमैटोग्राफी के दूसरे उपयोग का उल्लेख एक दूसरे शोध-निबन्ध (३३) में मिलता है। इसमें लेखकों ने दिखाया है कि स्वतन्त्र अमीनो-अम्ल आपस में प्रतिक्रिया करके पेप्टाइड बनाते हैं और ट्राइपेप्टाइड (ग्लूटाथायोन) एक विशेष एंजाइम की उपस्थिति में बनता है। इन प्रतिक्रियाओं को कागज-क्रोमैटोग्राफी से ज्ञात किया गया और प्रतिक्रिया से बने पदार्थों की पहचान भी इसी विधि से की गयी। इसके लिए कई सार-मिश्रण बनाये गये। इनमें ग्लूटाथायोन, भेंड़ के वृक्क में से निकाला गया एक एंजाइम और इन तीन अमीनो-अम्लों—ल्युसीन, वैलीन और फिनाइल ऐलानीन—में से कोई एक अम्ल होता था। जब इस सारे मिश्रण के क्रोमैटोग्राम बनाये गये, तो कुछ नये धब्बे बनते दिखाई पड़े। अनुमान लगाया गया कि यह सार-मिश्रण के किसी अमीनो-अम्ल का गामा-ग्लूटामिल यौगिक होगा। इस सार-मिश्रण की कई बूंदें क्रोमैटोग्राम पर दौड़ायी गयीं और नये धब्बों का कागज में से निष्कासन किया गया। निष्कासित पदार्थ का जल-विश्लेषण किया गया—इससे केवल ग्लूटामिक अम्ल और फिनाइल ऐलानीन प्राप्त हुए। सैन्गर की अंत-समूह^४ विधि से ज्ञात हुआ कि ग्लूटामिक अम्ल में अमीनों

1. Kidney

2. Enzyme

3. Digests

4. Sanger's end group method

अंत-समूह होता है। इससे यह निष्कर्ष निकला कि नया पदार्थ या तो ऐल्फा या गामा-ग्लूटामिल फिनाइल ऐलानीन है। अब ऐल्फा-ग्लूटामिल-फिनाइल-ऐलानीन के विश्वासपात्र नमूने को लेकर क्रोमैटोग्राम बनाया गया। चूंकि इस पदार्थ की कागज पर प्रक्रिया विभिन्न थी, अतः यह स्थापित किया गया कि अज्ञात पदार्थ गामा-ग्लूटामिल फिनाइल ऐलानीन है।

आल्बन एवं ग्रास (३४) ने कच्ची शर्करा में पाये जाने वाले रैफ़ीनोज की मात्रा की नित्यप्रति जांच के लिए कागज-क्रोमैटोग्राफी की विधि का प्रयोग किया। आपका कहना है कि कच्ची शर्करा के २ माइक्रोग्राम (०.०५ प्रतिशत) के नमूने की तनिक मात्रा को भी निर्धारित किया जा सकता है।

इन वैज्ञानिकों ने सारे-शीशे के उपकरण का प्रयोग किया और पार्टिज की भांति सुखाने वाले विशेष ऊष्मक को बनाया। प्रयोग में उपयुक्त विलायक का मिश्रण इस प्रकार था—नार्मल ब्यूटेनाल, पिरीडीन, जल और बेंज़ीन; ये द्रव क्रमशः ५ : ३ : ३ : १ के अनुपात में आयतन के अनुसार मिलाये गये थे। फव्वारे में प्रयुक्त द्रव ऐल्फा-नैफ़थाल का १ प्रतिशत विलयन था; प्रयोग के पहले इसके ५० मिलीलीटर में ५ मिलीलीटर फ़ास्फ़ोरिक अम्ल मिला लिया जाता था। इस विधि का पूरा वर्णन और उपकरण की फ़ोटो उनके बाद में प्रकाशित शोध-निबंध (३५) में दिये हुए हैं।

आल्बन एवं ग्रास का कहना है “क्रोमैटोग्राफी के अतिरिक्त अब तक जो अन्य विधियाँ मालूम हैं उनसे इन पदार्थों की इतनी थोड़ी मात्रा का यथार्थ निर्धारण कठिन है और अन्य विधियों के प्रयोग करने पर पदार्थ मिश्रण के अन्य अवयवों से प्रभावित भी हो सकते हैं।” वस्तुतः, जो उदाहरण ऊपर दिये गये हैं, उनसे स्पष्ट हो गया होगा कि ये प्रायोगिक फल कागज-क्रोमैटोग्राफी की विधि के अलावा किसी दूसरी विधि से नहीं प्राप्त किये जा सकते थे।

अन्य परख-विधियों के साथ क्रोमैटोग्राफी का उपयोग

अन्य परख-विधियों का उपयोग करने के पहले कागज क्रोमैटोग्राफीय विधि से किसी मिश्रण के अवयवों को पृथक् कर लेना चाहिए। बार्टलेट, हफ़ एवं जोन्स (३६) ने मेथिलयुक्त^१ शर्कराओं के अन्त-समूह के निर्धारण में रंगमापी विधि का

1. Methylated

वर्णन किया है ; यह एक अधिक अच्छी सूक्ष्म-रासायनिक विधि है। मेथिलयुक्त पालीसैकराइडों के टूटने से मेथिलयुक्त शर्कराएँ बनती हैं। इनको पहले कागज क्रोमेटोग्राम पर पृथक् कर लिया जाता है और तब हाथानं द्वारा बतायी विधि से गरम मेथिल ऐलकोहल के साथ निष्कासन कर लिया जाता है। इसके पश्चात् रंगमापी विधि लगायी जाती है। जिन प्रयोगों का उन्होंने वर्णन किया है उसके अनुसार मेथिलयुक्त ग्लाइकोजन^१ से मेथिलयुक्त शर्कराओं के बनने की मात्रा यह थी—७० माइक्रोग्राम २:३:४:६ टेट्रामेथिल ग्लूकोज, ५५६ माइक्रोग्राम २:३:६ ट्राइमेथिल ग्लूकोज, और १५३ माइक्रोग्राम डाइमेथिल ग्लूकोज। जब प्रयोग को दुहराया गया तो क्रमशः ८०.६०६ और १९८ माइक्रोग्राम वही पदार्थ उसी क्रम में प्राप्त हुए। इन वैज्ञानिकों का कहना है कि “टेट्रा” शर्करा की इन मात्राओं से ऐसा लगता है कि उसके अणु में ग्लूकोज की ११.९ अथवा ११.३ इकाइया है। अन्य विधियों से ज्ञात हुआ है कि इस “टेट्रा” शर्करा में ग्लूकोज की १२ इकाइयां हैं। विशेष बात यह है कि क्रोमेटोग्राफीय विधि में एक मिलीग्राम से कम पदार्थ की आवश्यकता होती है।

विशेष निरूपित करने वाली युक्तियों^२ के उपयोग

कागज पर जो धब्बे स्पष्ट रूप से नहीं दिखाई देते, उनको पहिचानने के लिए परा-वैगनी^३ प्रकाश का उपयोग किया जा सकता है। इसमें या तो धब्बों की प्रति-दीप्ति^४ की जा सकती है अथवा गीले कागज की। रासायनिक यौगिकों में रेडियम-धर्मी^५ तत्त्वों को भी मिलाया जा सकता है; ऐसा करने से वे यौगिक कागज पर जहाँ कहीं भी हों पहचाने जा सकते हैं। बोर्सनेल (३७) ने एक विशेष प्रकार का उपकरण बनाया। इसके द्वारा छ.ने-कागज के क्रोमेटोग्रामों में वितरित रेडियम-धर्मिता को परिमाणात्मक रूप से गिना जा सकता है। विशेष रूप से रेडियम-धर्मी फ्रास्फोरस की सहायता से हानेस एवं आइशरउड की विधि से पृथक् किये गये फ्रास्फेंट एस्टरों का मापन किया गया है।

पेनीसिलीन के प्रकार के यौगिकों के लिए ग्लिस्टर एवं ग्रेनार (३८) ने

- | | | |
|----------------|---------------------|-----------------|
| 1. Glycogen | 2. Scanning devices | 3. Wetra-violet |
| 4. Fluorecence | 5. Radio active | |

एक जल्दी हो जाने वाली परिवर्तित विधि का वर्णन किया है। आपने ब्लाटमैन नं० १ कागज को पोटैशियम फ़ास्फ़ेट के ६.२ PH वाले प्रतिरोध-विलयन में भिगो कर सुखाया। तत्पश्चात्, यौगिकों को आरम्भ-रेखा पर लगा कर कमरे के ताप पर जल-संतृप्त डाइ एथिल ईथर विलायक को कागज पर दौड़ाया। आपने १ मिलीमीटर छिद्र वाली सूक्ष्म-पिपेटों का भी उपयोग किया। इनसे २-३ मिली-मीटर व्यास (लगभग २ माइक्रोलिटर) वाली बूंदें बनती थीं। इनके प्रस्फुटन के लिए फव्वारे का प्रयोग नहीं किया गया, अपितु इनको *B. subtilis* के स्पोरोसो से युक्त अगर^१ की प्लेटों पर रख दिया गया। स्ट्रिप्सों को इस प्रकार आधे घण्टे तक रखा रहने दिया जाता है। इस अवधि के पश्चात् पेनीसिलीन यौगिक कागज में से प्लेट पर फैल जाते हैं। प्लेटों को २७° वाले ऊष्मक में रात भर रखा जाता है। इन वैज्ञानिकों ने ज्ञात किया कि मरे हुए स्पोरोसो के स्थान की चौड़ाई पेनीसिलीन के सांद्रण के (खुराक की इकाई के आधार पर) लागैरिथ्म से सीधी समानुपाती होती है; अर्थात् यदि इन दोनों का ग्राफ बनाया जाये तो सीधी रेखा प्राप्त होगी। ध्यान दीजिए कि इस प्रयोग से वे ही फल प्राप्त हुए हैं जो इस अध्याय के आरम्भ में वर्णित धब्बे के परिमाणात्मक मापन से प्राप्त हुए थे।

क्रमिक क्रोमैटोग्राम

जब ब्लाटमैन कागज के पूरे ताव का उपयोग किया जाता है तो आरम्भ रेखा पर लगभग तीस बूंदें रखी जा सकती हैं। इस तथ्य को उपयोग में लाकर किसी रासायनिक प्रतिक्रिया की समयानुसार प्रगति को जाँचा जा सकता है। इससे यह भी पता चलाया जा सकता है कि क्रोमैटोग्राफीय स्तम्भ में विभिन्न पदार्थ निष्कासक में किस क्रम से बाहर निकलेंगे। इसके उदाहरण पुस्तक के अन्त में दिये गये हैं।

साअ मान और रासायनिक रचना

कई दशाओं में कागज क्रोमैटोग्राम से रासायनिक पदार्थ की रचना को स्पष्ट करने में बहुत सहायता मिलती है। मार्टिन (३९) ने इस अनुमान से—किन्हीं दो फ़ंजों में से एक में किसी रासायनिक समूह (उदाहरणतया, CH_2 समूह) की

गति से संबंधित स्वतन्त्र ऊर्जा परिवर्तन' अणुके अन्य समूहों से प्रभावित नहीं होता— निकलने वाले निष्कर्षों पर गवेषणा की : इसके अनुसार पूरे अणु की पूर्ण स्वतन्त्र ऊर्जा अणु के विभिन्न समूहों की ऊर्जा को जोड़ कर निकाली जा सकती है। इससे यह स्पष्ट है कि एक सजातीय^१ श्रेणी के विभाजन-गुणक क्रमानुसार बढ़ते जायेंगे; जैसे वे किसी दो विलायकों के बीच में बढ़ जाते हैं। मार्टिन ने अपने पहले सूत्र का, जिसमें सांघ्र मान का विभाजन-गुणक से संबंध स्थापित किया है, इस सिद्धान्त के लिए भी उपयोग किया। आपने इसकी सहायता से पेप्टाइडों के विभाजन-गुणक पहले से ही गणित द्वारा बता दिये। इसमें उपयुक्त नियतांकों^३ की गणना के लिए आपको केवल कुछ अमीनो-अम्लों और कुछ पेप्टाइडों के विभाजन-गुणकों की आवश्यकता पड़ी। बाटे स्मिथ एवं वेस्टल (४०) ने यह भी सिद्ध किया कि यह नियम प्रकृति में पाये जाने वाले उन यौगिकों के, जिनका ढाँचा कार्बन के १५ परमाणुओं से बना होता है, हाइड्राक्सिल और ग्लूकोज समूहों के लिए भी ठीक है। आपने यह भी दिखाया कि—

$$\text{सापेक्ष गति सांघ्र} = \text{लॉग } \frac{1}{\text{सांघ्र}} - 1 \left(R_m = \log \frac{1}{R_F} - 1 \right)$$

जब सांघ्र को प्रतिस्थापित^४ होने वाले समूहों की संख्या के साथ ग्राफ में अंकित किया गया, तो अनेक दशाओं में सीधी रेखाएँ प्राप्त हुईं। इस सिद्धान्त के फलस्वरूप वे एक दशा में दो रासायनिक रचनाओं में से एक को दृढ़तापूर्वक निश्चित भी कर सके। हाल में ही दो अमरीकी शोध-शालाओं (४१, ४२) ने मार्टिन के शोध-कार्य को पुष्ट किया है। वस्तुतः यहाँ के वैज्ञानिकों का दावा है कि वह किसी भी इच्छित पेप्टाइड के सांघ्र मान की ०.०५ यथार्थता के अन्दर गणना कर सकते हैं।

आइशरउड एव जर्मिन (४३) ने कागज-क्रोमैटोग्राम में शर्कराओं के आचरण से सादी शर्कराओं की रचना का इसी प्रकार के विवेचन से संबंध स्थापित किया है।

भौतिक रसायनज्ञ कदाचित् सांघ्र मान और सुग्डेन के पैराकार^५ में कुछ संबंध पायेंगे। आशा की जाती है कि जब कागज क्रोमैटोग्राम से अन्य रासायनिक यौगिकों के सांघ्र मान प्राप्त होंगे तो उनसे उन यौगिकों के प्रस्तावित कई रचनात्मक सूत्रों^६ में से वास्तविक रचना सूत्र को स्थापित किया जा सकेगा।

1. Free energy change 2. Homologous 3. Constants
4. Substituent 5. Sugden's parachor 6. Structural formulae

अध्याय ४

स्तम्भ-क्रोमैटोग्राफी-अधिशोषण

अधिशोषक स्तम्भों पर निष्कासन द्वारा पृथक्करण क्रोमैटोग्राफी की सबसे पुरानी विधि है। इन विधियों पर काफ़ी साहित्य वर्तमान है। जेखमाइस्टर (१०) ने इन सबको एक पुस्तक में एकत्र कर दिया है। इसमें उपयुक्त उपकरण सरलतम होता है। किन्तु जो पाठक इस पुस्तक द्वारा क्रोमैटोग्राफी का ज्ञान सबसे पहले प्राप्त कर रहे हैं, उनको यह बताना आवश्यक है कि इस विधि से क्या किया जा सकता है। इसका वर्णन इस अध्याय के पहले भाग में किया गया है; दूसरे भाग में टिजेलियस और उप्सल में कार्य करने वाले उनके सहकारियों के कार्य का वर्णन किया गया है। बाद में इस विषय की नवीन बातें बतायी गयी हैं। टिजेलियस ने सक्रिय कार्बन को अधिशोषक की भाँति प्रयुक्त किया; उसका उपकरण मादा नहीं था। फिर भी इन लोगों ने अग्रभागीय विश्लेषण और विस्थापन-विधि को स्तम्भ क्रोमैटोग्राफी में सबसे पहले प्रयुक्त किया। आपके पश्चात् इस क्षेत्र में अनेक विकास हुए।

पूर्वकालिक कार्य

जब १९३१ में क्लून, विटरस्टाइन एवं लेडेरर (१) ने जैथोफिल रंग द्रव्यों का सफल पृथक्करण किया तो अधिशोषक स्तम्भों की ओर अनेक शोध-कर्ताओं का ध्यान आकृष्ट हुआ। यह मालूम था कि विभिन्न पौधों की पत्तियों से तैयार की गयी जैथोफिलो का गलनांक (१९३°) और सापेक्ष घूर्णन (एथिल ऐसीटेट में १४५°) लगभग एक समान ही होता है। ज्वार से निकली मक्का-जैथिन^३ का गलनांक २०७° और सापेक्ष घूर्णन -५५° होता है। यह सन्देह किया जाता था कि

1. Adsorbent
2. Specific rotations
3. Zeaxanthin

अण्डे के योक का पीला रंग-द्रव्य “लुटीन” वस्तुतः मिश्रण होता है क्योंकि इसका गलनांक इन दो शुद्ध यौगिकों के बीच में होता है। लुटीन को केलासन द्वारा पृथक् करने की विधि असफल रही, अतः इसके लिए स्वेट की स्तम्भ-विधि का प्रयोग किया गया।

उपर्युक्त प्रयोग में स्तम्भ १५ सेमी० लंबा और १ सेमी चौड़ा था। इसके नीचे रूई का पहल रख दिया गया और उसके ऊपर अवक्षेपित^१ खड़िया भर दी गयी। “लुटीन” के नमूनों को कार्बन-डाइ-सल्फाइड में घोल कर स्तम्भ पर लगा दिया गया। और अधिक कार्बन-डाइ-सल्फाइड को डाल कर स्तम्भ का “प्रस्फुटन” किया गया। विलायक के नीचे बहने की गति को बढ़ाने के लिए स्तम्भ के निचले भाग में हलका चूषण-पम्प^२ लगा दिया गया। जब प्रस्फुटन पर्याप्त हो गया तो पृथक् हुई पट्टियों को अधिशोषक स्तम्भ में से काट कर निकाल लिया गया। अधिशोषक में से पट्टी बनाने वाले पदार्थ का मेथिल ऐलकोहल द्वारा निष्कासन कर लिया गया।

“लुटीन” दो पट्टियों में पृथक् होती थी। निचली पट्टी मक्का-जैथिम की होती थी और ऊपरी पट्टी पत्तियों के सार जैथोफिल से मिलती-जुलती थी। अतः इन वैज्ञानिकों ने प्रस्ताव किया कि “लुटीन” शब्द को अंडे के यौगिक योक के अर्थ में ही प्रयुक्त किया जाये।

स्ट्रेन (४४) ने जैथोफिलों के अन्वेषण के लिए अधिशोषक-स्तम्भों का बहुत अधिक उपयोग किया है। आम तौर से प्रयुक्त स्तम्भ २५ सेमी० लम्बा और ३ सेमी० चौड़ा था। इसमें ९९ ग्राम मैग्नीसियम आक्साइड (Micron Brand No 2641, California Chemical Co., Newark, Calif.) और गरम की हुई सिलिकायुक्त मिट्टी ((Hyflo Supercel. F. A. ५०१), के बराबर मिले हुए मिश्रण को भरा गया। इसके ऊपर जो विलयन लगाया गया उसकी रचना यह थी—बीटा-कैरोटीन, क्रिप्टोजैथिन, लुटीन और मक्काजैथिन, प्रत्येक के १०० मिलीग्राम; और १० मिलीग्राम नियोजैथिन; इनको १४ मिलीलीटर १,२ डाइक्लोरो एथेन में घोला गया। और अधिक डाइक्लोरो एथेन से निष्कासन किया गया। इससे ५ पट्टियां बनीं जिनका ऊपर से नीचे क्रम यह था—नियोजैथिन, मक्का-जैथिन, लुटीन, क्रिप्टोजैथिन और बीटा-कैरोटीन। बड़े

स्पैचुला को डाल कर ऊपर की दो पट्टियाँ निकाल ली गयीं ; एथिल ऐलकोहल द्वारा निष्कासन करके जैथोफिलों को अधिशोषक से पृथक् कर लिया गया। बाकी तीन पट्टियों के ऊपर एथिल ऐलकोहल डाला गया और उनको विभिन्न निष्कासित में एकत्र कर लिया गया। जिस क्रम में पृथक्करण हुआ है उसी क्रम में इन जैथोफिलों की प्राप्त मात्रा (वर्णक्रम-अवशोषण द्वारा ज्ञात) इस प्रकार थी—५, ८५, ८५, ९० और ९० मिलीग्राम।

प्रस्फुटन के पहले मिश्रित जैथोफिन स्तम्भ के १/६ भाग में रहती थी। स्तम्भ में पृथक्करण के लिए लगभग १/६ घंटे का समय लगता था।

स्ट्रेन ने इस विधि को कई प्रकार से किया। जिन विलायकों का उपयोग किया गया, वे ये थे—क्लोरोफार्म और पिरीडीन आंशिक रूप से सफल हुए, कार्बन डाइसल्फाइड मैग्नीसिया पर विच्छेदित हो जाती थी, और बाज़ार में मिलने वाली गैसोलीन अधिशोषक को रंगहीन बना देती थी। विभिन्न अधिशोषक ये थे—कैल्सियम कार्बोनेट पर काफ़ी हल्का^१ अधिशोषण होता था, सक्रिय एल्युमिना से जैथोफिल विच्छेदित हो जाते थे, शर्करा और मैग्नीशियम फ़ास्फ़ेट से पृथक्करण अपूर्ण होता था। जब मैग्नीसिया पर एथिल ऐलकोहल की प्रक्रिया की जाती थी और उसे साधारण ताप पर सुखाया जाता था तो अधिशोषक निष्क्रिय बन जाता था। १००° पर सुखाने से अधिशोषक अर्द्ध रूप से सक्रिय बन जाता था; और ऊँचे ताप पर सुखाने से वह पूर्ण रूप से सक्रिय हो जाता था।

अभी जिन प्रयोगों का वर्णन किया गया, इनसे स्पष्ट है कि अधिशोषण क्रोमैटोग्राफी कभी-कभी उन पदार्थों को पृथक् कर देती है जिनको अन्य विधियों से पृथक् नहीं किया जा सकता। इसके साथ-साथ इस विधि की दो खामियाँ भी स्पष्ट होनी चाहिए। अनेक प्रयोग करने के पश्चात् उपयुक्त विधि का चयन हो पाता है, और स्तम्भ में पदार्थों की पूर्ण प्राप्ति^२ प्रायः नहीं हो पाती। कदाचित् यह आवश्यक है कि जब बहुत मात्रा में अधिशोषक पर थोड़े पदार्थों का अधिशोषण किया जायेगा तो उनकी प्राप्ति अपूर्ण ही रहेगी ; वह पूर्ण रूप से परिमाणात्मक कभी नहीं हो सकती।

1. Spatula

2. Eluate

3. Weak

4. Recovery

इस विधि से कार्य करने में दो और बातों पर विशेष ध्यान देना पड़ता है— मिश्रण में सबसे कम मात्रा में उपस्थित पदार्थों के पहचानने की विधि, और मिश्रण में सबसे अधिक मात्रा में उपस्थित पदार्थ के अधिशोषण के अनुसार उपकरण की लम्बाई-चौड़ाई । इनके कारण यह विधि कभी कभी असफल रह जाती है।

स्तम्भ-धारक^१

अधिशोषक के स्तम्भ के लिए धारक बड़ा सरल होता है। इसके लिए शीशे अथवा पायरेक्स की नलिकाओं का उपयोग किया जा सकता है। इनका अंदरूनी व्यास कुछ मिलीमीटर से लेकर कई सेंटीमीटर तक हो सकता है। इस में भरे अधिशोषक की लम्बाई व्यास की अपेक्षा पांच से दस गुनी होती है। अधिशोषक के नीचे साधारणतया किसी प्रकार का छिद्रनय तनुपट^२ होता है। किस भाँति के तनुपट का उपयोग किया जाये, यह स्तम्भ में से अधिशोषक के निकालने की विधि पर निर्भर रहता है। यदि अधिशोषक की पूरी नलिका धारक में से निकालनी है और उस पर पदार्थों की पहचान के लिए प्रस्फुटित करने वाले द्रव से भीगे ब्रुश को फेरना है, या निकाले हुए अधिशोषक को विभिन्न टुकड़ों में काटना है तो एक चपटे तनुपट का (जो चलायमान हो किन्तु जिसके घसिटने में कठिनाई न हो) उपयोग किया जा सकता है। यह नलिका के निचले सँकरे भाग में रहता है। जेखमाइस्टर ने इस कार्य के लिए पोसिलेन की बनी छननी-प्लेट का कपड़ा लपेट कर तनुपट के रूप में उपयोग किया। इस विधि से तनुपट के पश्चात् निष्कासित नीचे की सँकरी नलिका में किनारे से गिरता रहता है नलिका के अन्त में यदि उपयुक्त कोण पर घिस कर उचित प्रकार का छेद बना दिया जाये तो इसमें से निष्कासित बूँद बूँद बन कर बाहर निकलता रहता है। यदि निष्कासन-विधि से पृथक् हुए द्रवों के विभिन्न नमूनों को पूर्ण रूप से एकत्र करना है तो अधिशोषक को स्तम्भ में किसी सुगमतर विधि से रोका जा सकता है। नलिका के निचले सिरे को सँकरा^३ बनाया जा सकता है। या इसे किसी पतले छिद्र वाली दूसरी नली से जोड़ा जा सकता है। इन दोनों दशाओं में सँकरे

1. Column Containers

2. Porous diaphragm

3. Filter-plate

4. Constricted

सिरे पर शीशा-ऊन^१ की डाट^२ को लगा देने से काम चल जाता है। इस डाट की ऊपरी सतह को जो अधिशोषक से छूती रहती है, चपटा होना चाहिए। यदि नलिका के संकरे सिरे को कोन की शकल का बनाया जाये जिसका अर्द्ध-कोण 45° से कम हो तो शीशे-ऊन की डाट लगाने में सरलता होती है। जब शीशे-ऊन को स्तम्भ में भर दिया जाता है तो उसके फुचरे ऊपर निकले रहते हैं। इनको बनाने के लिए शीशे की गोल छड़ के सिरे पर एक वर्ग काट लेना चाहिए और उसके थोड़े भाग को निकले रहने देना चाहिए। जो भाग बाहर निकला हुआ है उसको पैना होना चाहिए। इस छड़ को स्तम्भ में डाल कर शीशे-ऊन को ठीक तरह से दवाने पर फुचरे कुचल कर ठीक से डाट बना देते हैं। इस प्रकार अधिशोषक को स्तम्भ में रोकने की विधि से स्तम्भ के नीचे द्रव का आयतन काफी रहता है क्योंकि इसमें छनने की गति तेज रहती है। अतः इससे निष्कासित के विभिन्न अशों के मिश्रण की संभावना रहती है। यह अधिक महत्व की बात नहीं है क्योंकि साधारणतया एक पदार्थ के पृथक्करण के पूर्ण होने के पूर्व दूसरे पदार्थ का पृथक्करण आरम्भ हो जाता है और इस प्रकार पदार्थों के पृथक् होते समय निष्कासित में केवल एक ही पदार्थ नहीं रहता।

स्तम्भों का भरना

पहले, शोधकर्त्ता सूखा चूर्ण थोड़ी-थोड़ी मात्रा में डाल कर स्तम्भ को भरते थे। हर बार डाली हुई चूर्ण की मात्रा को हिला कर नीचे कर लिया जाता था, या उसे अच्छी तरह दबा दिया जाता था। दवाने के लिए लकड़ी अथवा शीशे की छड़ के नीचे कोई चपटी डिस्क^३ लगी रहती थी। कुछ शोधकर्त्ता नलिका के किनारे को अंगुली से ठुकराते थे, जिससे चूर्ण नीचे बैठ जाये; कुछ लोग नलिका के नीचे हलका चूपण-पंप लगा देते थे जिससे वातावरण के दाब से चूर्ण नीचे बैठ जाये।

बाद में चूर्ण के स्थान पर उपयोग में लाये जाने वाले विलायक में चूर्ण को आलम्बित^४ कर लिया गया। इन सब विधियों का उद्देश्य यह था कि तैयार किये स्तम्भ पर द्रव के बहने की गति सम होनी चाहिए जिससे पृथक् होने वाले पदार्थ

चपटे क्षैतिज टुकड़ों में पृथक् हों। विभिन्न सतहों में अधिशोषक के होने से कोई विशेष हानि नहीं होती थी। किन्तु यदि ये सतहें चपटी न हों तो उस से पदार्थों के पृथक्करण में बाधा पड़ती थी। किसी एक विधि का उपयोग करके स्तम्भ का भरना सतोपजनक नहीं होता था। कभी-कभी क्रोमैटोग्राम बनने के बाद नलिका के बीच में लम्बी नाली-सी दिखाई पड़ती थी ; कभी-कभी क्रोमैटोग्राम में पदार्थ टेढ़ी पट्टियों में पृथक् होता था अथवा पृथक् हुए पदार्थ एक दूसरे में मिल जाते थे। इनका कारण अधिशोषक के विभिन्न भागों का समतल न होना है। कुछ अधिशोषकों का चूर्ण बड़ा महीन होता है और इसके कारण विलायक के बहने की गति धीमी पड़ जाती है। निचले सिरे पर वायु-चूषण में गति को बढ़ाने में सहायता मिलती है, किन्तु इसका उपयोग करने समय बड़ी सावधानी बरतनी चाहिए। कभी-कभी चूषण की गति तेज हो जाती है, तब बाहर निकलने हुए विलायक में से हवा के बुलबुले भी निकलने हैं ; इससे विलायक के समरूप में बहने में बाधा पड़ती है। चूषण द्वारा दाब में अन्तर बहुत धीरे-धीरे करना चाहिए, नहीं तो कभी कभी-गोले अधिशोषक को धक्का लगता है, जिससे सफल क्रोमैटोग्राम नहीं बन पाते।

अधिशोषक भरे स्तम्भ में यदि गैस के बुलबुले रह जाते हैं तो इससे विलायक की गति सम नहीं रह पाती। सूखे चूर्ण से भरे स्तम्भों में सदैव आशंका रहती है कि उनमें कहीं हवा के बुलबुले न हों। कभी कभी “गैस-रहित” एथिल ऐलकोहल के प्रयोग से स्तम्भ के अधिशोषक में घुले हवा के बुलबुले नष्ट हो जाते हैं। जब स्तम्भ को विलायक में आलम्बित चूर्ण से भरा जाता है तो गैस के बुलबुलों के होने की संभावना तो कम हो जाती है, किन्तु चूर्ण के बैठने की गति में विभिन्नता होने और द्रव में भँवर पड़ने के कारण अधिशोषक की असमता एवं उनमें विभिन्न स्तम्भों के बनने की संभावना बढ़ जाती है। अच्छा यही है कि स्तम्भ भरते समय आलम्बित चूर्ण को एक बार डाल कर पूरे विलायक को नीचे बहने दिया जाय। इससे भँवर कम बनते हैं और अधिशोषक युक्त आलम्बित द्रव में गति भी कम हो जाती है। स्तम्भ भरते समय यदि चूर्ण को बराबर हिलाने रहा जाये तो उससे कई बार स्तम्भ को भरने के कारण जो सतहें बनती हैं, वे भी कम हो जाती हैं।

1. Air-Suction

स्तम्भ को भरते समय ये जितनी भी कठिनाइयां हैं वे ऐसे अधिशोषक के चूर्ण को काम में लाने से कम हो जाती हैं जिसके कण लगभग एक आकार के हों। कणों को एक आकार का बनाने के लिए चलनी का उपयोग किया जाता है। दुर्भाग्यवश, जिन अधिशोषकों का स्तम्भ में उपयोग होता है वे चलनी से साधारणतया नहीं छाने जा सकते क्योंकि वे अत्यधिक महीन होते हैं। कणों को सम आकार का बनाने के लिए तलछटीकरण^१ अथवा द्रव की धारा से चूर्ण को ऊपर खिसका कर धोने की विधि भी काम में लायी जाती है, किन्तु इन विधियों को व्यवहार में नहीं लाया जा सकता क्योंकि प्रयोग के पहले अधिशोषक को गरम करके सक्रिय बनाना पड़ता है।

स्तम्भों के असंतोषजनक परिणाम का एक कारण और भी है और वह यह कि अधिशोषक स्तम्भ में कुछ समय रहने के बाद सिकुड़ जाता है। उनके अधिशोषकों में अधिशोषित जल होता है और विलायक में उपस्थित जल द्वारा इस अधिशोषित जल की मात्रा में अन्तर पड़ जाता है। यदि स्तम्भ के अधिशोषक में जल है और अजलीय विलायक का उपयोग किया गया है तो जल विलायक में घसित आता है और स्तम्भ कुछ हद तक सिकुड़ जाता है। यह कठिनाई कभी-कभी बड़ा गम्भीर रूप धारण कर लेती है। विलायक के बह चुकने के बाद अधिशोषक में से जल निकल जाता है और उसकी मात्रा कम हो जाती है। किन्तु अधिशोषक के कणों में जो आपसी आकर्षण होता है उससे वे एक दूसरे से तो चिपटे रहते हैं, किन्तु उनके बाहरी आयतन में कमी हो जाती है। फलतः; नलिका के किनारे स्थान रिक्त हो जाता है। यदि विलायक ऊपर रह गया है तो यह इस रिक्त स्थान में से जल्दी निकल जाता है और अधिशोषक बिना प्रक्रिया के पड़ा रहता है। जब ऐसा होता है तो बाहर से ऐसा मालूम पड़ता है कि पृथक्करण बड़ा सफल हुआ है क्योंकि पृथक् हुए पदार्थों की चपटी पट्टियां दिखाई देती हैं, किन्तु जब अधिशोषक की नलिका को बाहर निकाल कर पट्टियों को काटा जाता है तो पता चलता है कि चपटी पट्टी के ऊपर अधिशोषक के बीच में पृथक् हुए पदार्थ की पतली लकीर ऊपर चली गयी है जो चारों ओर अधिशोषक होने के कारण छिपी हुई थी।

1. Sedimentation

परख द्रव का लगाना

जब स्तम्भ पर लगाये परख-द्रव की पट्टी पतली होती है तो प्रस्फुटित क्रोमेटोग्राम साफ़ और किनारों पर नुकीला होता है। अधिशोषक के ऊपरी भाग को बिल्कुल चपटा होना चाहिए और जब परख-द्रव डाला जाये तो उसे बिगड़ना नहीं चाहिए। कुछ शोध-कर्त्ता अधिशोषक के ऊपरी भाग को दबा देने हैं जिससे उसकी ऊपरी सतह सख्त और चपटी हो जाये। कुछ लोग उसके ऊपर छतने कागज़ का एक पतला टुकड़ा रख देते हैं, जिससे कि परख-द्रव की गिरने वाली बूंद ऊपरी सतह को सुरक्षित रखे। जब द्रव तेजी से एकदम डाला जाता है तो भी इससे सतह की थोड़ी रक्षा हो जाती है। सबसे अच्छा तरीका यह है कि स्तम्भ के ऊपर प्रयुक्त विलायक की थोड़ी मात्रा को रहने देना चाहिए और स्तम्भ को कभी सूखने नहीं देना चाहिए। परख-द्रव लगाने के पहले विलायक को स्तम्भ में नीचे बहने देना चाहिए। जैसे ही उसकी सतह अधिशोषक पर से हटती नज़र आये तो परख-द्रव को लगा देना चाहिए।

परख-पदार्थों का विलयन अधिकतम सांद्रण में होना चाहिए, किन्तु इसका सांद्रण इतना अधिक न हो कि अवक्षेपण की संभावना रहे। अवक्षेपण से स्तम्भ की कार्य-विधि में बाधा पड़ सकती है। परख-द्रव को एक पिपेट में भर लिया जाता है। इस पिपेट का निचला भाग इस तरह मुड़ा होता है कि वह स्तम्भ के अन्दर डाली जाने पर नलिका के किनारे को छूती रह कर अधिशोषक से जरा ऊपर रहे और उसको छू न पाये। परख-द्रव को तब तक बहने दिया जाता है जब तक कि वह लगभग समाप्त न हो गया हो और उसकी सतह अधिशोषक के कणों से टूटने वाली हो। परख-द्रव की सारी मात्रा इसी भाँति थोड़ी-थोड़ी करके लगायी जा सकती है, जब तक कि सारा परख-द्रव स्तम्भ पर अधिशोषित न हो जाये। अब परख-पदार्थ एक या दो मिलीमीटर सँकरी पट्टी के रूप में अधिशोषक की ऊपरी सतह से थोड़ा नीचे लग जाता है।

क्रोमेटोग्राम का प्रस्फुटन

अधिशोषक के ऊपर स्तम्भ में रिक्त स्थान को शुद्ध विलायक से भर दिया जाता है और उसको नीचे बहने दिया जाता है। विलायक विभिन्न गतियों से विभिन्न पदार्थों को स्तम्भ में नीचे बहा ले जाता है। वस्तुतः यह निष्कासन-विधि है और जैसे-जैसे प्रयोग चलता रहता है, वैसे-वैसे पदार्थों की पट्टियाँ और उनके बीच

की दूरी बढ़ती जाती है। साधारणतया पट्टी के पिछले (ऊपरी) भाग की अपेक्षा निचले किनारे (अग्रभाग) पर पदार्थ का सांद्रण अधिक होता है। इसका कारण वाद में बताया जायेगा। पिछले भाग में सांद्रण इतना कम होता है कि वह सूक्ष्म मात्रा में लकीरें अथवा विभिन्न सतहें बना देता है। साधारणतया, एक पदार्थ के पूर्ण रूप से पृथक् होने के पूर्व ही दूसरा पदार्थ पृथक् होने लगता है। ऐसी स्थिति में पट्टी का कम सांद्रण वाला ऊपरी भाग दूसरे पदार्थ की पट्टी से मिल जाता है और उसके पृथक्करण में बाधा डालता है। अच्छे क्रोमैटोग्राफीय पृथक्करण की सफलता के लिए उपयुक्त विलायकों और अधिशोषकों का ज्ञान होना चाहिए और इसके लिए प्रायोगिक अनुभव की भी आवश्यकता है।

इन विधियों द्वारा कार्य करने वाले कभी-कभी “सा” मान का जिक्र करते हैं। यह “सा” मान इस प्रकार प्राप्त किया जाता है—पट्टी के बीच वाले हिस्से की गति को विलायक की सतह के अधिशोषक में नीचे धंसने की गति से भाग दे दिया जाता है। यह विधि ठीक नहीं है, क्योंकि यह मान वस्तुतः स्तम्भ में द्रव आयतन और ठोस आयतन के अनुपात पर निर्भर होता है और यह विधि स्तम्भ में पदार्थ के भरने के घनत्व पर निर्भर रहती है। दूसरी बात यह है कि विलायक की नीचे धंसने वाली सतह को ठीक ठीक बनाना भी संभव नहीं है। जहाँ संभव हो, वहाँ मार्टिन द्वारा बताये साँझा मानों का उपयोग करना चाहिए। “सा” मान का केवल एक महत्व है और वह यह कि दूसरों द्वारा किये गये प्रयोगों से अपने प्रयोगों की तुलना की जा सकती है।

यदि स्तम्भ-धारक में से खाली अधिशोषक नलिका को बाहर निकालना हो तो विलायक को काफी देर बहने दिया जाता है जिससे पट्टियों का पृथक्करण पर्याप्त रूप से हो जाये। ऐसा करने में दुबारा विलायक डालने के पहले विलायक की सतह को अधिशोषक में थोड़ा नीचे चला जाने दिया जाता है। इस प्रकार थोड़ी-सी हवा भी स्तम्भ के अन्दर पहुँच जाती है। इस से अधिशोषक स्तम्भ और अधिक समाप्त हो जाता है ; दुबारा विलायक डालने के पहले, डाले गये अधिशोषक में कितना धंसने दिया जाये यह बार-बार प्रयोग करने पर अनुभव से ही ज्ञात होता है। जब पट्टियों को काट कर अलग करना हो अथवा रंगहीन

पट्टियों को पहचानने के लिए प्रस्फुटित करने वाले द्रव से भीगे बुश को चलाना हो तो सारे स्तम्भ को बाहर निकालने की आवश्यकता पड़ती है।

यदि निष्कासन बहुत देर तक होता है तो पृथक् हुई सारी पट्टियां धीरे-धीरे स्तम्भ के निचले भाग तक जा पहुँचती हैं, यदि विलायक को और अधिक देर तक नीचे बहने दिया जाये तो ये पट्टियां विलायक में घुल कर बाहर आ जाती हैं। एकत्रक को बदल कर इन घुली हुई पट्टियों को विभिन्न पात्रों में भरा जा सकता है और इच्छानुसार उनका उपयोग किया जा सकता है।

एक ही स्तम्भ को कई बार प्रयुक्त किया जा सकता है, किन्तु दो बातें ध्यान में रखनी चाहिए। एक तो स्तम्भ के अधिशोषित पदार्थ विलायक द्वारा परिमाणात्मक रूप में बाहर निकल जायें ऐसा बहुत कम होता है; अतः दुबारा पृथक्करण के लिए थोड़े मिश्रण से स्तम्भ की पहले जाँच कर लेनी चाहिए। दूसरे, यदि यह सावधानी न रखी जाये कि अधिशोषक में जल की उपयुक्त मात्रा वर्तमान है तो अधिशोषक की सक्रियता में अन्तर पड़ता है। यह भी संभव है कि प्रायोगिक अशुद्धियां स्तम्भ में अधिशोषित हो कर स्तम्भ के अधिशोषक गुण-धर्मों पर प्रभाव डालें।

अधिशोषण क्रोमैटोग्राफी द्वारा पृथक् हो सकने वाले पदार्थ

इस अध्ययन में वर्णित विधियों का अनेक प्रकार के यौगिकों के पृथक्करण में उपयोग किया गया है। उदाहरणतया, जेक्माइस्टर (१०) ने इन यौगिकों का वर्गीकरण इस प्रकार किया है—स्टीरोल और स्टीरवायड, टर्पीन और इससे संबंधित यौगिक, ग्लेकेरॉयड, विटामिन, ऐंटीबायोटिक, आदि। जैसा अधिशोषण-प्रक्रिया से अनुमान लगाया जा सकता है, यह विधि उन यौगिकों के लिए बहुत उपयोगी है, जिनके अणुओं में परमाणुओं की संख्या बहुत अधिक होती है। जेक्माइस्टर का कहना है, बहुत प्रयास करने पर भी ऐसी कोई सर्व व्यापी स्तम्भ-क्रोमैटोग्राफी की विधि ज्ञात नहीं है जिसमें धन आयनों के मिश्रण का विश्लेषण एवं परिमाणात्मक परिमाणन हो सके। इवाब (४५) ने धातुओं को, अधिशोषण क्रोमैटोग्राफी द्वारा पृथक् करने के पूर्व, साधारण विश्लेषक वर्गों (**Pb**, **Ag**, **Hg**⁺ आदि) में पृथक् कर लिया।

विलायक

इनका चयन पृथक् किये जाने वाले पदार्थों की प्रकृति पर काफी हद तक

निर्भर होता है। अच्छे विलायक में ये गुण होने चाहिए—अधिशोषक के गुण-धर्मों पर कोई सीधा प्रभाव न हो; बहुत अधिक श्यानता न हो, अन्यथा इससे स्तम्भ में विलायक के बहने की गति काफी धीमी हो जाती है, और पृथक् किये गये पदार्थों को विलायक में से आसानी से निकल आना चाहिए। विलायकों के चयन के समय पारविद्युत नियतांकों की सारणी को देख लेने से लाभ होता है। इससे इच्छानुसार “घ्रुवीय” विलायकों को चुना जा सकता है। आम तौर से अधिक घ्रुवीय विलायक का निष्कासन पर तेजी से प्रभाव होता है। अर्थात् वह शीघ्र और अधिक पूर्ण होता है। अतः यदि किसी विलायक से असुगम “सा” मान प्राप्त होता है तो उसकी अपेक्षा अधिक घ्रुवीय विलायक को लेने पर “सा” मान सुगम (ऊँचा) हो सकेगा।

कई विलायकों के क्रमानुसार प्रयोग से भी पदार्थों को पृथक् किया गया है—इसको “अंशीय निष्कासन”³ कहते हैं। राइखस्टाइन एवं शाप्पे (४६) ने स्टीरॉयडों के पृथक्करण के लिए इस विधि का उपयोग किया। स्मिट (४७) ने स्नेहक तेल के हाइड्रोकार्बनों को भी इसी भांति पृथक् किया। यह बात ध्यान देने योग्य है कि यदि विलायकों को अधिशोषक स्तम्भ पर से चला लिया जाये तो वे शुद्ध हो जाते हैं।

अधिशोषक

एल्यूमिना सबसे अधिक प्रचलित अधिशोषक है। सिलिका, मैग्नीशियम आक्साइड और सेल्युलोज का भी अनेक प्रयोगों में उपयोग किया गया है। प्रायः अधिशोषकों को उपयोग के पहले “सक्रिय” बनाना पड़ता है। उदाहरणतया, एल्यूमिना को ३६०° तक पाँच घंटे गरम करना पड़ता है। ठंडा करने के बाद जेक्समाइस्टर ने पिपेट द्वारा थोड़ा जल डाला और मशीन से दो घंटे तक पात्र को हिला करके एल्यूमिना और जल को सजातीय बना लिया। आपका कहना है कि ०.५—१ प्रतिशत तक जल एल्यूमिना की सक्रियता को काफी प्रबल बना देता है। किन्तु यदि जल की मात्रा को ‘कई प्रतिशत से २० प्रतिशत तक’

1. Viscosity
3. Fractional elution

1. Dielectric Constants
4. Lubricating

बढ़ा दिया जाये तो उसका असर कम हो जाता है। स्टीवर्ट (४८) ने ऐन्थाक्वीनोन यौगिकों के पृथक्करण के समय इस का विस्तार पूर्वक अन्वेषण किया।

जेस्त्रमाइस्टर ने एल्यूमिना की सक्रियता का लक्षण-निर्धारण करने के लिए ब्राकमैन एवं शाडर की विधि का वर्णन किया है। इसका यहाँ पर वर्णन किया जायेगा, क्योंकि शोध-साहित्य में इस विधि का काफी जिक्र आता है। सक्रियता की पाँच कोटियाँ^१ बतायी गयीं —

I—सबसे अधिक सक्रिय,

II—I से कम सक्रिय,

III—II से कम सक्रिय,

IV—III से कम सक्रिय, एवं

V—सबसे कम सक्रिय।

इन पर क्रमानुसार ये ऐजो—रंग अधिशोषित होते हैं—पैरा हाइड्राक्सी ऐजो बेंजीन, पैरा अमीनो ऐजो बेंजीन, सूडान रेड, सूडान येलो, पैरा मेथाक्सी ऐजो बेंजीन और ऐजो बेजीन। एल्यूमिना के किसी नमूने के परीक्षण के लिए उसको १.५ सेंमी० व्यास वाले और ५ सेंमी० लम्बे स्तम्भ में भरा जाता है। अधिशोषकों के नीचे रुई-ऊन की डाट लगा दी जाती है और उसके ऊपर छनने कागज की पतली डिस्क रख दी जाती है। उपर्युक्त रंगों की २ मिलीग्राम मात्रा को शुद्ध बेंजीन (पोटेशियम हाइड्राक्साइड) पर आसुत की २ मिली मीटर मात्रा में घोल लिया जाता है। इसके पश्चात्, ऊपर दिये हुए क्रम के अनुसार दो रंगों के मिश्रण को स्तम्भ पर लगाया जाता है। तत्पश्चात्, पहले ८ मिलीमीटर लाइट पेट्रोलियम और उसके बाद बेंजीन और लाइट पेट्रोलियम के मिश्रण को (आय-तन के अनुसार ४:१ अनुपात में) स्तम्भ पर बहने दिया जाता है। कोटि 1 के एल्यूमिना में पैरा मेथाक्सी ऐजो बेंजीन ऊपर अधिशोषित होती है और ऐजो बेंजीन नीचे कोटि II में पैरा मेथाक्सी ऐजो बेंजीन नीचे अधिशोषित होती है और सूडान येलो ऊपर; ऐजो बेंजीन का अधिशोषण ही नहीं होता। इसी प्रकार कोटि V तक लक्षण-निर्धारण किया जा सकता है। कोटि V वाले एल्यू-मिना के स्तम्भ में पैरा हाइड्राक्सी ऐजो बेंजीन ऊपर अधिशोषित होती है और

पैरा अमीनो ऐज़ो बेंज़ीन नीचे; अन्य रंग इस पर अधिशोषित ही नहीं होते।

कुछ विशेष अधिशोषक

प्रकाश-सक्रिय समावयवों^१ को प्रकाश-सक्रिय अधिशोषक पर ही पृथक् करने के प्रयाम आंशिक रूप से सफल रहे हैं। उदाहरणतया, हैन्डसन एवं रूल (४९) ने लेक्टोज का अधिशोषक की भांति प्रयोग करके पैरा-फ़ेनिलीन-बिस-इमीनो-कर्पूर को किसी भांति पृथक् कर ही लिया।

कभी-कभी अधिशोषक में कुछ ऐसे पदार्थ मिला दिये जाते हैं जिससे रंगहीन पदार्थ स्तम्भ पर ऐसा आचरण करें जिससे वे रंगीन मालूम पड़ें। ब्राकमैन (५०) ने ऐसा करने के लिए प्रतिदीप्त सूचकों^२ को भी इसमें शामिल कर लिया। जब पदार्थ रंगहीन होते हैं और प्रतिदीप्त भी नहीं होते तो यह विधि काम में आती है। एल्यूमिना, मैग्नीशियम आक्साइड, और कैल्सियम कार्बोनेट में मोरीन मिलायी जा सकती है। सिलिका के लिए बेरबेरीन उपयुक्त है। ये दोनों यौगिक इस प्रकार अधिशोषित होते हैं कि उनका निष्कासन नहीं किया जा सकता। अतः, प्रतिदीप्त स्तम्भ में जहाँ-जहाँ पर पदार्थ अधिशोषित होता है वहाँ प्रतिदीप्त नहीं होती। इस प्रकार अधिशोषित पदार्थों की पहचान कर ली जाती है। चमकते हुए पेंट^३ के महीन प्रतिदीप्त चूर्ण को जब अधिशोषक से मिला दिया जाता है तो भी ऐसा ही प्रभाव होता है।

राबिन्सन (५१) ने अर्लेनमायनर एवं ड्वान द्वारा प्रस्तावित विधि का प्रयोग करके स्टार्च और α -हाइड्राक्सीक्वीनोलीन के मिश्रण के स्तम्भ पर अकार्बनिक आयनों को पृथक् किया है। पीतल संबन्धी^४ मिश्र-धातु में जस्ते के परिमाणात्मक निर्धारण के लिए इस विधि का उपयोग किया गया है।

टिज़ेलियस का कार्य और उसके बाद के विकास

जब प्रोटीन से टूट कर बने^५ पदार्थों को पृथक् करने की अधिक अच्छी विधियों

- | | |
|-----------------------------|---------------------------|
| 1. Optically active isomers | 2. Fluorescent indicators |
| 3. Paint | 4. Brazing |
| | 5. Degradation |

का विकास किया जा रहा था, तो टिजेलियस और उनके साथियों (५२,५३) ने अग्र-भागीय विश्लेषण और विस्थापन की विधियों का विकास किया। टिजे-लियस ने सक्रिय कार्बन पर अधिशोषण-क्रोमैटोग्राफी का उपयोग किया। आपने स्तम्भ के द्रव निष्कासितों के वर्तनाकों का परीक्षण किया। चूँकि एक विलयन के वर्तनांक का विलयन में घुले विलयशील के माद्रण से सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है, अतः इस विधि से रंगहीन द्रव्यों के माद्रण का परिमाणन किया जा सका।

इसमें जिस यंत्र का उपयोग किया गया वह सरल नहीं है। अतः उसका विस्तारपूर्वक वर्णन नहीं किया जा रहा है, क्योंकि सरल विधि ढूँढ़ने वाले शोध-कर्त्ता के लिए यह विधि उपयुक्त नहीं है। तथापि, टिजेलियस के कार्य ने क्रोमैटोग्राफी के आधुनिक क्षेत्रों का आरम्भ किया और इसलिए, उसकी विधियों का कुछ वर्णन अवश्य करना चाहिए।

अपने आरम्भिक प्रयोगों में टिजेलियस ने “श्लिगेन” प्रकाशीय विधि का उपयोग किया, इसका कलिल-कणों का चार्ज जानने वाले प्रयोगों में उपयोग किया जाता है। इस विधि में परीक्षण-मेल अथवा “क्यूवेट” में द्रव होता है, जो विभिन्न घनत्व वाली परतों में पृथक् हो जाता है। विभिन्न परतों के वर्तनाकों में भी अन्तर होता है और इस कारण जब प्रकाश की समांतर किरणें इस मेल पर छोड़ी जाती हैं तो उनमें वर्तन हो जाता है। ऐसा तभी होता है जब घनत्व के अनुसार परते ठीक तरह से पृथक् हुई हों और उन सबके ऊपर सब से अधिक घनत्व वाले द्रव की परत हो; अन्यथा, संवहन^१ द्वारा मिश्रण हो जाता है। इसमें बचने के लिए टिजेलियस ने सबसे पहले स्तम्भ में विलायक को जोर से ऊपर फेंक कर शुद्ध विलायक को सेल में ले लिया। इसके बाद जब स्तम्भ पर पहली पट्टी बनी तो उच्चतर घनत्व वाले द्रव की सेल में परत बन गयी। विस्थापन एवं अग्रभागीय विश्लेषण विधियों का विकास इसलिए करना पड़ा क्योंकि साधारण निष्कासन से दो पट्टियों के बीच में शुद्ध विलायक बाहर निकलता है

- | | |
|-------------------------------|------------------------|
| 1. Eluate | 2. Refractive index |
| 3. “Schlieren” optical method | 4. Colloidal particles |
| 5. Cuvette | 6. Convection |

और इसका घनत्व कम होने के कारण संवहन द्वारा सेल में द्रवों की विभिन्न परतें मिल जाती हैं। टिजेलियस ने यह दिखा दिया कि मिश्रित शर्कराओं, मिश्रित अम्लों, और मिश्रित अमीनो-अम्लों को सक्रिय-कार्बन पर उनके अवयवों में पृथक् किया जा सकता है। जैसा पहले अध्याय में बताया जा चुका है, विस्थापन द्वारा अवयवों का भली-भाँति पृथक्करण नहीं हुआ, क्योंकि क्रोमेटोग्राम पर पट्टी एक दूसरे से मिली-जुली थीं; इस मिश्रण को विधि में उपयुक्त परिवर्तन करके कम किया जा सकता है।

बाद में “श्लीरेन” विधि के स्थान पर हस्तक्षेप-मापी विधि का उपयोग किया गया। क्लेसन (५४) ने इस विधि का वर्णन किया है। इस में परीक्षण सेल एक केश-नली थी जो 2×0.18 व्यास सेंमी० की थी। इसके अंदरूनी भाग पर सोने के कणों की महीन परत समान रूप से बनी थी और यह इतनी छोटी थी कि इसके उपयोग से निष्कासन बिना अधिक मिश्रण के होता था। दशमलव के पाँचवें स्थान पर भी यदि वर्तनांक में अन्तर होता था, तो उसको मापा जा सकता था; पर इसके लिए एक डिग्री के सौवें भाग तक ताप का नियंत्रण करना पड़ता था।

स्तम्भ अथवा “छनने”^३ धातु के बने होते थे और कई स्तम्भों को एक साथ पेंच से कसा जा सकता था। इसका कारण अगले अध्याय में बताया जायेगा, पर यहाँ यह बताना आवश्यक है कि ऐसा करने से पृथक्करण अच्छा होता है। इस प्रयोग में कम आयतनों का उपयोग किया जाता था; और इनका साधारणतया व्यास 1.25×0.8 सेंमी. से लेकर 10×1 सेंमी. तक होता था। उनमें जो सक्रिय कार्बन भरा जाता था, उसके कण ५—४० माइक्रान के होते थे। विलायक के बहने की गति को तेज करने के लिए तीन वातावरण^३ तक का दाब रखा जाता था।

इन विधियों से स्तम्भ पर कार्य करने की विधि को बताना आवश्यक है। जब एक विलयशील वाले विलयन को स्तम्भ में लगाया जाता है और विलयशील के सांद्रण एवं विलयन के आयतन को निष्कासित में मापा जाता है, तो यह ज्ञात होता है कि पहले शुद्ध विलायक निकलता है। जब उसका एक निश्चित आयतन

निकल चुकता है तो निष्कासित में विलयशील का सांद्रण एकदम बढ़ जाता है; यह तब तक स्थिर रहता है जब तक विलयन निकलता रहता है। स्पष्ट रूप से सांद्रण का नियतांक वही है जो सांद्रण मूल विलयन का होता है। प्रयोग में उपयुक्त शुद्ध विलायक के पूर्ण आयतन को “ग्रहण-आयतन”^१ कहते हैं। जब ग्रहण-आयतन में से उपकरण एवं अधिशोषक में चिपके रह जाने वाले द्रव के आयतन को निकाल दिया जाता है तो उसे “सही ग्रहण-आयतन”^२ कहते हैं। प्रति ग्राम अधिशोषक के सही ग्रहण आयतन को “सापेक्ष ग्रहण-आयतन”^३ कहते हैं। इन शब्दों का अग्रभागीय विश्लेषण एवं विस्थापन-प्रस्फुटन दोनों में उपयोग होता है।

जब सापेक्ष ग्रहण-आयतन को सांद्रण से गुणा किया जाता है तो प्रति ग्राम अधिशोषक पर अधिशोषित विलयशील की मात्रा ज्ञात हो जाती है। जब विभिन्न सांद्रण वाले विलयशीलों से प्रयोग किये जाते हैं तो अधिशोषण “समताप-वक्र”^४ को खींचा जा सकता है।

चिपके रह जाने वाले द्रव के आयतन को निकालने की दो विधियाँ हैं—एक तो यह कि सूखे अधिशोषक और खाली स्तम्भ को तौल लिया जाये और बाद में गीले स्तम्भ को तौल लिया जाये। इस प्रकार सही करने वाला मान प्राप्त हो जाता है, यदि विलायक का घनत्व ज्ञात है। दूसरी विधि यह है कि ऐसे विलयशील से प्रयोग किया जाये जो स्तम्भ में भरे अधिशोषक द्वारा अधिशोषित नहीं होता। इस प्रकार निष्कासित में शुद्ध विलायक का जो आयतन होता है वही सही ग्रहण-आयतन है।

अग्रभागीय विश्लेषण

विलयशील (क) और (ख) वाले एक विलयन को लीजिए। यदि (ख), (क) की अपेक्षा मजबूती से अधिशोषित होता है और यदि उनके सांद्रण सां.क और सां.ख हैं तो निष्कासित को तीन भागों में बाँटा जा सकता है। पहले तो शुद्ध विलायक का आयतन आ_१ निकलता है, तत्पश्चात् आ_२—आ_३; इसमें

1. Retention Volume

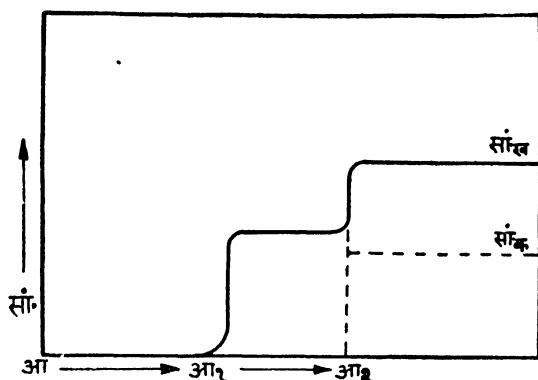
2. Corrected Retention Volume

3. Specific retention volume

4. Isotherm

केवल (क) होता है। A_2 से बड़े आयतन में (क) और (ख) दोनों होते हैं और इनका सांद्रण वही होता है जो मौलिक विलयन का था।

सरलता की दृष्टि से, मान लीजिए कि A_1 और A_2 सही ग्रहण-आयतन हैं। अब स्पष्ट है कि स्तम्भ पर अधिशोषित (ख) की मात्रा A_2 सां.ख है।



चित्र १३—अग्रभागीय विश्लेषण में दो विलयशीलों का पृथक् होना

स्तम्भ पर अधिशोषित (क) की मात्रा A_2 सां.ख — $(A_2 - A_1)$ सां. है, जहाँ सां. आयतन $(A_2 - A_1)$ का सांद्रण है।

यदि मिश्रित विलयशीलों के अधिशोषण समताप-वक्र ज्ञात हैं, तो सां० की गणना की जा सकती है। जब तीन या उससे अधिक विलयशील होते हैं तो स्थिति काफी जटिल हो जाती है। परिमाणात्मक दृष्टि से ऐसा लगता है कि मिश्रित अधिशोषण समताप-वक्रों के निर्धारण में अग्रभागीय विश्लेषण से, उसकी उलटी विधि की अपेक्षा, सां० के मापित मानों से अधिक सहायता मिलती है। एक विशेष पदार्थ के साथ क्लेसन ने यह दिखा दिया कि यदि यह मान लिया जाये कि लैंगम्योर^१ के अधिशोषण-समीकरण को इस प्रयोग में लगाया जा सकता है तो उपयुक्त सूत्र को ज्ञात किया जा सकता है। आपने सिद्ध कर दिया है कि दो और कभी-कभी तीन सजातीय पदार्थों, जैसे, वसीय अम्ल, की सक्रिय कार्बन पर प्रतिक्रिया वैसी ही होती है जैसी उन्होंने गणना करके बताया थी।

शेपर्ड एवं टिजेलियस (५५) ने कुछ प्रोटीन विलयनों का जो सफल अग्र-भागीय विश्लेषण किया उसमें सिलिका-श्लिषि और सुपरसेल^१ का अधिशोषक की भाँति प्रयोग किया गया था। इसमें विलायक एक फ्रास्फेट-प्रतिरोध था जिसमें कीटाणु-वृद्धि को रोकने के लिए फार्मैलीन मिला दी गयी थी।

अग्रभागीय विश्लेषण इस दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है कि उससे ज्ञात होता है कि स्तम्भ पर परख-द्रव को लगाने के लिए विलयशीलों की दशा कैसी होनी चाहिए और उनको किस अवस्था में होना चाहिए।

अधिशोषण द्वारा विस्थापन-क्रोमैटोग्राफी

क्लेसन ने सक्रिय-काठकोयले पर अधिशोषण द्वारा द्रव विलायकों को लेकर विस्थापन-विधि का प्रयोग करना चाहा। अन्य अधिशोषकों पर भी ये प्रयोग किये गये। अन्य शोध-कर्त्ताओं की भाँति आपने यह ज्ञात किया कि वसीय अम्लों का अधिशोषण इतना मजबूत होता है कि उनको अधिशोषक से दुबारा नहीं निकाला जा सकता। फलतः, इन पदार्थों के साथ विस्थापन-विधि असफल रहती है। सामान्यतः निष्कासन विधि का भी इसमें उपयोग नहीं किया जा सकता। क्लेसन ने ट्राप्पे^२ का उद्धरण दिया है। ट्राप्पे महोदय अंशीय निष्कासन की विधि से एक सजातीय श्रेणी के सब पदार्थों को दूसरी श्रेणी से तो पृथक् करने में सफल रहे, किन्तु एक ही सजातीय श्रेणी के विभिन्न पदार्थों को इस विधि से पृथक् करने में असफल हुए।

हाल में ही, हैमिल्टन एवं होल्मन (५६) ने कुछ स्टीरवायडों को स्वतः अंकन^३ वाली विधि से पृथक् किया है, विशेष रूप से डिहाइड्रोआइसोएन्ड्रोस्टीरोन, टेस्टो-स्टीनोर और प्रोजेस्टीरोन को। इसमें इन तीनों यौगिकों का ०.५ प्रतिशत चोलस्टीरोल के एथेनाल में विलयन द्वारा एक मिश्रित अधिशोषक स्तम्भ (Darco G-60 charcoal एक भाग, और Hyflo Supercel दो-भाग) पर विस्थापन किया गया। बाद के अध्याय में द्रव विस्थापन स्तम्भों की क्रिया का वर्णन किया जायेगा।

गैसों और बाष्पों की अधिशोषण-क्रोमैटोग्राफी

क्लेसन (५४) ने सक्रिय कार्बन को अधिशोषक की भाँति प्रयुक्त करके एक स्वतः अंकन वाली विस्थापन-विधि का वर्णन किया है। फ़िलिप्स (९) ने क्लेसन की विधियों से दुबारा प्रयोग किये; इन दोनों शोधकर्त्ताओं ने इन विधियों को बड़ा अच्छा पाया।

इनकी विधि द्रव-क्रोमैटोग्राफी के समान है, यद्यपि द्रवों से अधिशोषण के साथ अपलटनीय^१ अधिशोषण होने की संभावना कम ही है। इसमें चयनशीलता^२ काफी अधिक है। क्लेसन का दावा है कि २,३-डाइमेथिल हेक्सेन और २,५-डाइमेथिल हेक्सेन; एवं बेंजीन और साइक्लोहेक्सेन यौगिकों जैसे किन्हीं भी युग्मों^३ को इस विधि से पृथक् किया जा सकता है। इसमें स्तम्भ वैसे ही होते हैं जैसे द्रव-क्रोमैटोग्राफी में, किन्तु अधिशोषक का उतना बारीक होना जरूरी नहीं है। विलयन के वर्तनांक के स्थान पर, गैसों अथवा बाष्पों की उपस्थिति को तापीय चालकता से शेक्सपियर कैथेरोमीटर^४ की विधि की तरह जाना जाता है।

क्लेसन ने नाइट्रोजन धारा को एक विशेष रीति से बनाये स्टील के गैसमापी^५ से प्राप्त किया। इसमें भार इस प्रकार व्यवस्थित थे जिससे दाब का नियंत्रण हो सके। फ़िलिप्स ने नाइट्रोजन गैस का एक सिलिंडर लिया और इसमें प्रवाहमापी^६ को लगा दिया।

परख-मिश्रणों के क्लेसन ने एक विशेष नमूनेवाली नली^७ में लिया, इसको ठोस कार्बन-डाइक्साइड से ठंडा किया जा सकता था। फ़िलिप्स ने इसको द्रव-वायु से ठंडा किया। यंत्र में परख मिश्रणों को इस नली द्वारा डाला गया। विस्थापी पदार्थ के लिए दोनों शोध-कर्त्ताओं ने एथिल-ऐसीटेट का उपयोग किया। फ़िलिप्स ने ०° पर एथिल-ऐसीटेट के पात्र में से नाइट्रोजन धारा को प्रवाहित करके उसे संतृप्त किया।

- | | |
|------------------|----------------------------|
| 1. Irreversible | 2. Selectivity |
| 3. Pairs | 4. Shakespear Katharometer |
| 5. Gasometer | 6. Flowmeter |
| 7. Sampling tube | |

क्लेसन ने स्तम्भ के लिए ४० सेंमी० लम्बी स्फटिक की नलियाँ लीं। इसके दोनों सिरों पर धातु की पत्तियाँ लगी थीं; जल से इनको ठंडा रखने के लिए भी साधन था। स्फटिक-नली को ग्लिसरीन-लिथार्ज की सीमेंट लगा कर धातु की पत्तियों से दबा दिया गया। चार प्रकार की नलियों का उपयोग किया गया और इनके छिद्रों का व्यास ०.५ से लेकर १.८ सेंमी० तक था। फ़िलिप्स ने तीम शीशे की नलियों का उपयोग किया; ये १० सेंमी० लंबी थीं और इनके छिद्र ०.२, ०.८ एवं १.५ सेंमी० के थे। दोनों शोधकर्त्ताओं ने नलियों को गरम किया—क्लेसन ने बिजली का तार लपेट कर और फ़िलिप्स ने नली के उपयुक्त विलायक के वाष्प में रख कर।

अधिशोषकों के लिए क्लेसन ने दो प्रकार के सक्रिय कार्बन लिये—७० से ११० छिद्र प्रति वर्ग सेंमी० वाली, एवं ११०-१७० छिद्र प्रति वर्ग सेंमी० वाली जाली से छने हुए। फ़िलिप्स ने ब्रिटिश-मानक-संस्था^१ के अनुसार ४० छिद्र वाली चलनी को लिया और इसको तार की उपयुक्त जाली से ठीक बना लिया। क्लेसन के एक प्रयोग में ६ ग्राम कार्बन लिया गया और १.५ ग्राम एथिल ऐसीटेट का विस्थापन-प्रस्फुटक^२ की भाँति प्रयोग हुआ। स्तम्भ में एक बार परख-द्रव के लगाये जाने की मात्रा उतनी ही रखी गयी जिससे स्तम्भ का थोड़ा ही भाग, जैसे एक चौथाई, संतृप्त हो सके। इस मात्रा के वास्तविक निर्धारण के लिए यह आवश्यक है कि प्रयोग में पदार्थों के पृथक् होने की क्षमता को ध्यान में रखा जाये। तौले हुए पदार्थों की वास्तविक तौल और उनकी तराजू वाली तौल में लगभग १ प्रतिशत का अंतर होता है। फ़िलिप्स ने २ घन सेंमी० काठकोयले (Sutcliffe, Spackman, No. 208C) पर ४० मिलीलीटर प्रति मिनट के हिसाब से बहते हुए एथिलीन, प्रोपेन, ब्यूटेन आदि गैसों के अधिशोषण-मान दिये हैं। इन प्रयोगों में क्लेसन की अपेक्षा कम पदार्थों का उपयोग किया गया था, किन्तु यथार्थता लगभग १ प्रतिशत ही थी।

ताप-चालकता की विधि में धातु के टुकड़े में रखे एक बेलनाकार सेल पर गरम प्लैटिनम का प्रतिरोधक तार^३ लपेट दिया जाता है। इससे ह्यूटस्टोन-ब्रिज

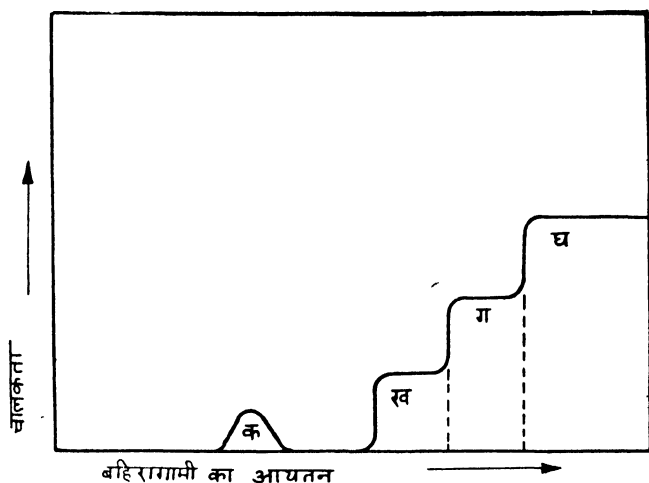
1. B.S.S. Sieve

2. Displacement developer

3. Resistance wire

परिपथ^१ की एक भुजा बन जाती है। ऐसी दो भुजाओं की आवश्यकता होती है एक परख-गैस के लिए और दूसरी मानक-गैस^२ के लिए। गैसों की तापीय चालकता में अंतर होने से प्लैटिनम के तार के वैद्युत प्रतिरोध में अंतर पड़ जाता है और इसको धारा-मापी^३ से मापा जा सकता है। उपयुक्त दोनों शोध-कर्त्ताओं ने इस विधि में अपने इच्छानुसार परिवर्तन किये और स्वतः-अंकन विधियों का प्रयोग किया। अधिक ज्ञान के लिए उनके मौलिक शोध-लेखों को पढ़ना चाहिए।

प्रयोग द्वारा प्राप्त मानों का विश्लेषण इस प्रकार किया जाता है—परीक्षण-फलों के अनुसार ग्राफ में तापीय चालकता के सामने स्तम्भ पर चलायी गयी गैस के आयतन के मानों के बिन्दु रखे जाते हैं (देखिए चित्र १४)। एक पदार्थ की



चित्र १४—विस्थापन प्रस्फुटन में चार विलयशीलों का पृथक् होना

तापीय चालकता उसके सांद्रण से समानुपाती होती है, यद्यपि इन दोनों का अनुपात विभिन्न पदार्थों के लिए पृथक्-पृथक् होता है। यदि यह अनुपात ज्ञात है, तो एक

“सीढ़ी”^१ की ऊँचाई से संबंधित सांद्रण को ज्ञात किया जा सकता है। और यदि उसको सीढ़ी की लंबाई से गुणा किया जाये तो एक अवयव की मात्रा को ज्ञात किया जा सकता है। चित्र १४ में यही परिस्थिति दिखायी गयी है—मिश्रण के तीन अवयव हैं—क, ख और ग। इन तीनों को विस्थापन-प्रस्फुटक घ से पृथक् किया गया है।

यदि अधिशोषण—समाताप-वक्र^२ ज्ञात हैं तो प्रत्येक पदार्थ के सांद्रण को एक अन्य विधि से सरलतापूर्वक ज्ञात किया जा सकता है, क्योंकि उनका निर्धारण विस्थापी^३ पदार्थ के सांद्रण से होता है। विस्थापन प्रक्रिया के आरंभ में मिश्रण स्तम्भ के थोड़े-से भाग पर रहता है और उसका वितरण अग्रभागीय विश्लेषण के अनुसार होता है। पदार्थों की मिश्रित पट्टी बहते हुए प्रस्फुटक के साथ नीचे खिसक आती है और वह तब तक टूटती रहती है जब तक कि मिश्रण के अवयव पृथक् न हो जायें। अधिक मजबूती से अधिशोषित होने वाला पदार्थ कम अधिशोषित होने वाले पदार्थ को हटाता रहता है। इस प्रकार, जब मिश्रण एक स्तम्भ पर चल चुकता है तो उसके पदार्थों का वितरण एक स्थिर रूप धारण कर लेता है, इसमें प्रत्येक पट्टी की ऊँचाई और लंबाई स्थिर होती है।

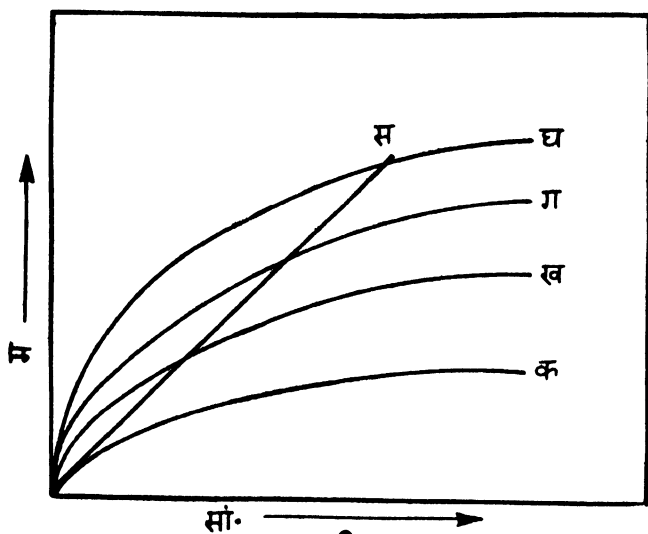
इन परिस्थितियों में आयतन (आ) प्रस्फुटक के चलाने से गति (ग) होती है और यह स्तम्भ की उस लंबाई पर निर्भर होती है जिसमें एक ग्राम अधिशोषक रहता है। मान लीजिए कि स्तम्भ की लंबाई (ल) पर (ख) की कुछ मात्रा लगी है और उसके स्थान पर (ग) लग जाता है। यदि ये दोनों मात्राएं गख और गग हैं और उनके सांद्रण सांख और सांग हैं, तो स्पष्ट रूप से—

$$g_{ख} / आ = सांख, \text{ और } g_{ग} / आ = सांग;$$

$$\text{फलतः, } g_{ख} / सांख = g_{ग} / सांग = आ$$

चित्र १४ में दिखाये पदार्थों के क्रोमेटोग्राम के समताप-वक्र चित्र १५ में दिखाये गये हैं। अभी जो सरल संबंध स्थापित किया गया है, अर्थात् $g_{ग}$, यह सीधी रेखा से व्यक्त हो रहा है, क्योंकि $g_{ग}$ नियतांक है। यह सीधी रेखा आरम्भ बिन्दु

से भी निकलती है और (घ) के समताप-वक्र को भी उस स्थान पर काटती है जिससे उपयुक्त सांद्रण का पता चलता है। यदि (क), (ख) और (ग) के भी



चित्र १५—स्तम्भ-अधिशोषक पर चित्र १४ के अनुसार विलयशीलों के अवशोषण समताप-वक्र

समतापवक्र ज्ञात हैं तो यह सीधी रेखा वक्रों को उस स्थान पर काटेगी जिससे उनके सांद्रणों को ज्ञात किया जा सके। ये वे सांद्रण हैं जो स्तम्भ पर विस्थापित हुए थे। इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि सीधी रेखा (क) के समताप-वक्र को नहीं काटती, वह उसके आरंभ बिंदु से अवश्य मिलती है। इससे स्पष्ट है कि क “निष्कासित” होता है और इसीलिए चित्र १४ में उसका विशेष वक्र (चोटी की भाँति) दिखाई पड़ता है। इस चित्रमय विधि का विकास टिजेरिलियस ने किया।

1. Eluted

अध्याय ५

स्तम्भ-क्रोमैटोग्राफी-विभाजन

इस अध्याय में जिन विधियों का वर्णन किया गया है, उनकी विशेषता यह है कि उनमें दो विलायकों का प्रयोग होता है और ये मिश्र्य नहीं होते अथवा अंशतः मिश्र्य होते हैं। इस अध्याय में मार्टिन एवं सिन्ज (४) के मौलिक शोध-निबंध का वर्णन किया गया है और इन वैज्ञानिकों के मस्तिष्क में यह अंतर स्पष्ट था। आप लोगों ने यह भी कहा है कि—“गतिशील फ़ेज द्रव न होकर वाष्प भी हो सकती है।” इस सिद्धांत के आधार पर गैस और द्रव के बीच में विभाजन का उपयोग करके एक नवीन विधि ज्ञात की गयी है और इसका वर्णन इसी अध्याय में बाद में किया जायगा।

विभाजन-स्तम्भों पर प्रक्रिया सदैव निष्कासन-विधि से की जाती है। लेवी (५७) ने विस्थापन-विधि का उपयोग करके थोड़े-से प्रयोग किये, पर आपने प्रायोगिक विधि का विस्तार पूर्वक वर्णन नहीं किया।

क्रेग की “प्रवाह-विरोधी” वितरण^१ विधि का भी जिक्र किया गया है; वस्तुतः इसे क्रोमैटोग्राफी के अध्याय में नहीं रखना चाहिए।

विभाजन-स्तम्भों और अन्य स्तम्भों पर कार्य करने की विधि में काफ़ी अंतर नहीं है। फलतः, इस अध्याय में विभाजन-क्रोमैटोग्राफी के उपयोगों का वर्णन किया जायेगा। आवश्यकतानुसार कुछ स्थलों पर व्यावहारिक रूप से उपयोगी तथ्यों पर भी प्रकाश डाला जायेगा।

मार्टिन एवं सिन्ज के मौलिक प्रयोग

जिन दो विलायकों का मार्टिन एवं सिन्ज ने उपयोग किया, वे थे—नार्मल

ब्यूटेनाल और क्लोरोफार्म। इनके साथ सिलिका-शिलिष का स्तम्भ में उपयोग किया गया। स्तम्भ धारक ३० सेंमी० लंबी नली थी और इसका व्यास १ सेंमी० था। इस नली के निचले सिरे पर छिद्रयुक्त चांदी की प्लेट थी और इस पर छनने कागज़ की दो सतहें लगा दी गयीं। शुष्क सिलिका-शिलिष को जल में मेथिल आरेंज के संतृप्त विलयन (विलयनशिलिष—भार के अनुसार ७।१०) से मिला लिया गया। इसके फलस्वरूप हल्के गुलाबी रंग का एक चूर्ण बन गया जो मिलाने वाले पात्र में चिपक ही नहीं पाता था। इस चूर्ण की उतनी मात्रा को लिया गया जिसमें ५ ग्राम सिलिका थी, इसका ३५ मिलीमीटर क्लोरोफार्म में घोला गया। क्लोरोफार्म को पहले ही जल से, जिसमें १ प्रतिशत (आयतन-अनुसार) नार्मल ब्यूटेनाल था, संतृप्त कर लिया गया था। ऐसा करने से गुलाबी चूर्ण का रंग पीला हो गया।

इस आलम्बन^१ को स्तम्भ-धारक में डाला गया। स्तम्भ के निचले भाग से क्लोरोफार्म की आवश्यकता से अधिक मात्रा निकल गयी और शिलिष धीरे-धीरे जमती गयी। जब यह शिलिष अपनी साधारण उंचान तक आ गयी तो उसका ऊपरी भाग शुष्क मालूम पड़ता था। यदि स्तम्भ के ऊपरी भाग को क्लोरोफार्म से सदैव गीला रखा जाये, तो वह वैसे का वैसे ही बना रहता था। ऐसा करने से स्तम्भ की केशनलियों में क्लोरोफार्म भरा रहता था और उनमें हवा अंदर नहीं पहुँच पाती थी। जब स्तम्भ में दुबारा क्लोरोफार्म डाला गया तो शिलिष ऊपर नहीं उठी, यद्यपि वह क्लोरोफार्म से हलकी होती है।

पृष्ठ ५७ पर बतायी विधि से विश्लेषण किये जाने वाले पदार्थों को लगाया गया। विलायक के रूप में नार्मल ब्यूटेनाल और क्लोरोफार्म का उपयोग किया गया। और अधिक विलायक डालने पर क्रोमेटोग्राम का प्रस्फुटन होने लगा। पीले स्तम्भ पर गुलाबी पट्टी धीरे-धीरे नीचे खिसकने लगी और अपने अवयवों^३ में पृथक् हो गयी। अधिक विलायक का उपयोग करके इन पृथक् पट्टियों को स्तम्भ में से निकलते द्रव के रूप में एकत्र किया जा सकता है। विलायक मिश्रण की थोड़ी-सी भी अशुद्धियों से पट्टियों के नीचे खिसकने की गति बदल जाती है। शुद्ध क्लोरोफार्म से गति बहुत धीमी थी। बी० पी० क्लोरोफार्म द्वारा (जिसमें

१ प्रतिशत एथेनाल था) मिश्रण के अवयवों को अच्छी तरह से प्राप्त किया जा सका, पर सबसे अच्छा पृथक्करण तब हुआ जब क्लोरोफार्म में आधा प्रतिशत नार्मल ब्यूटेनाल था।

मार्टिन एवं सिन्ज ने अपने प्रयोगों द्वारा यह स्पष्ट कर दिया कि ऐसीटिल-युक्त अमीनो-अम्लों में से प्रत्येक को इस विधि द्वारा स्तम्भ में से भली-भाँति प्राप्त किया जा सकता है। उन्होंने ऐसीटिल-युक्त अमीनो-अम्लों के मिश्रण को पृथक् करने का प्रयास किया। पट्टियों के अनुसार निष्कासित के अंश पृथक् कर लिये गये और निर्वात में रख कर उनको सुखा लिया गया। अवशिष्ट पदार्थ को थोड़े जल में घोल लिया गया और ०.०१ नार्मल बेरियम हाइड्रोक्साइड से उसका अनुमापन किया गया; इसमें फीनोलफ्थैलीन का सूचक (इंडिकेटर) की भाँति उपयोग हुआ। इन विधियों से फ़िनाइल ऐलानीन, नारल्युसीन, आइसोल्युसीन, ल्युसीन, प्रोलीन और वैलीन के ऐसीटिल व्युत्पन्न^१ का पृथक्करण किया गया। ऐलानीन, ग्लाइसीन आदि के व्युत्पन्न स्तम्भ के सबसे ऊपरी भाग में रहे। इन पदार्थों की केवल कुछ मिलीग्राम मात्रा ही ली गयी थी।

सिलिका-श्लिषि की तैयारी

मार्टिन एवं सिन्ज ने “शुष्क अवक्षेपित”^२ बी० डी० एच० सिलिका-श्लिषि का उपयोग किया। इसको सांद्रित हाइड्रोक्लोरिक अम्ल में बार-बार उबाला गया जिससे लौह आदि अशुद्धियाँ निकल जायें। तत्पश्चात्, श्लिषि को आसुत जल और ९७ प्रतिशत एथेनाल से धोया गया। इसको ११०° पर सुखाकर रख लिया गया। बाद में इसी विधि से श्लिषि तैयार करने पर उतनी अच्छी श्लिषि नहीं बनी जैसी पहले बनी थी। अतः इस विधि में थोड़ा परिवर्तन किया गया। बाज़ार में मिलने वाले औद्योगिक वाटर-ग्लास (१४०° Tw., Jos. Crosfield Ltd., Warrington) को उसके दुगुने आयतन के जल और १० नार्मल हाइड्रोक्लोरिक अम्ल में खूब चलाया गया। मेथिल आरेंज को बाहरी सूचक के रूप में डाल दिया गया था। आवश्यकता प्रतीत होने पर कुछ घंटों के बाद और अधिक अम्ल डाला गया। तत्पश्चात् इसको बुझने छानने पर छान लिया

गया और उसे तब तक धोया गया जब तक सूचक उसमें से निकल नहीं गया। तब श्लिषि को एक या दो दिन तक रखा रहने दिया गया; तत्पश्चात्, उसको पुनः धोया गया और 110° पर उसे सुखा लिया गया।

जैसा बाद में ज्ञात होगा, इस प्रकार से बनी सिलिका-श्लिषि से भी काफ़ी कठिनाई प्रतीत हुई। अतः, इसके स्थान पर जलज उद्भिज्जयुक्त मिट्टी^१ का उपयोग किया जाने लगा है।

विभाजन क्रोमैटोग्राम का सिद्धान्त

मार्टिन एवं सिन्ज ने विभाजन क्रोमैटोग्राम का जो सिद्धान्त प्रतिपादित किया, वह एक ऐसे नमूने पर आधारित था जिसका चित्र १ एवं २ (देखिए, अध्याय १) में दियासलाई के समान पात्रों की ढेरी के रूप में वर्णन किया गया है। आपने ही “सैद्धान्तिक प्लेट”^२ के विचार को जन्म दिया। एक सैद्धान्तिक प्लेट के तुल्य ऊँचाई (स० प० त० ऊँ०) की परिभाषा यह दी गयी—यह वह ऊँचाई है जिसमें से निकलने वाला विलयन अगतिशील फ़ेज़ में विलयशील के औसत सांद्रण से सतह भर तक संतुलन में रहता है। यह मान लिया गया कि एक प्लेट से दूसरी प्लेट में विसार^३ गौण रहता है, और दो फ़ेज़ों के बीच में किसी विलयशील का वितरण अनुपात, सांद्रण तथा दूसरे विलयशीलों की उपस्थिति से प्रभावित नहीं होता।

उन्होंने जो समीकरण बनाया, वह इस प्रकार है—

$$k = \frac{1}{\sqrt{2} \pi r} \left(\frac{A}{r v} \right)^r \times \text{प्रा} \left(\frac{r - A}{v} \right)$$

जहाँ k = विलयशील की मात्रा;

r = प्लेट का क्रमिक नंबर;

A = क्रोमैटोग्राम के प्रस्फुटन में उपयुक्त विलायक का आयतन; और

$$v = \text{ऊँ. (क्ष}_g + a \text{ क्ष}_a),$$

जिसमें $\text{ऊँ.} = \text{स० प० त० ऊँ.},$

क्ष_g = गतिशील फ़ेज़ का गोल-काटीय^४ क्षेत्रफल,

1. Diatomaceous earth

2. “Theoretical plate”

3. Diffusion

4. Cross-sectional

α (अ.फा) = विभाजन-गुणक, अर्थात् $\frac{\text{अगतिशील फ़ेज में सांद्रण}}{\text{गतिशील फ़ेज में सांद्रण}}$ और

क्षेत्र = अगतिशील फ़ेज का गोल-काटीय क्षेत्रफल।

उपर्युक्त समीकरण और तर्क से यह सिद्ध किया जा सकता है कि—

$$\alpha = \frac{\text{क्ष}_\text{प}}{\text{क्ष}_\text{अ}} - \frac{\text{क्ष}_\text{ग}}{\text{क्ष}_\text{अ}},$$

जिसमें, क्ष = नली का गोल-काटीय क्षेत्रफल, और

$$\text{प} = \frac{\text{पट्टी की गति}}{\text{स्तम्भ के ऊपर की नली में विलायक की सतह की गति}}.$$

मार्टिन एवं सिन्जने ऐसीटिल प्रोलीन और ऐसीटिल फ़िनाइल ऐलानीन से प्रयोग किये। आपने यह मालूम किया कि α के ज्ञात मान और स्तम्भ में पट्टी की गति से गणित α के मानों में काफ़ी समानता थी। आपने यह भी ज्ञात किया कि सांद्रण बढ़ने पर विभाजन-गुणक कम होता जाता है। स्तम्भों के पृथक् करने की क्षमता की तुलना करने में स० प० त० ऊँ के विचार से काफ़ी सहायता मिलती है। इन वैज्ञानिकों का अनुमान था कि उनके प्रयोगों में स० प० त० ऊँ का वास्तविक मान लगभग ०.५०२ से मी० था।

प्रायोगिक और सैद्धांतिक मानों में तुलना दो और बातों पर निर्भर है—सिलिका-श्लिषि में अधिशोषण के गुण नहीं होने चाहिए, और उस के विभिन्न नमूनों में पृथक् करने की क्षमता भी एक प्रकार की ही होनी चाहिए। यह भी दिखाया जा सकता है कि सांद्रण के अनुसार विभाजन-गुणक के बदलने के कारण इन प्रयोगों को दुबारा करने पर वैसे ही फल नहीं मिलते।

सिलिका-श्लिषि को तैयार करने में कठिनाई

गार्डन, मार्टिन एवं सिन्ज (५८) ने अपने द्वारा बनायी सिलिका-श्लिषि का विस्तार पूर्वक वर्णन किया है। पृ० ८० पर बतायी विधि से सिलिका-श्लिषि को बनाना आरंभ किया जाता है। पर हाइड्रोक्लोरिक अम्ल को धार बाँध कर छोड़ा जाता है और दोनों पदार्थों को खूब जोर से चलाया जाता है। धार तभी रोकी जाती है, जब पदार्थों को चलाया जा रहा हो। पहले, विलयन में परिवर्तन

धीरे-धीरे होता है; बाद में मोटी रबड़ी^१ जैसी बन जाती है और मिश्रण को जोर से चलाने के कारण बहुत छोटे ढेलों के अलावा बाकी सब टूट जाते हैं। जब मिश्रण थाइमोल ब्लू^२ से स्थायी रूप से अम्लीय होने का चिह्न देता है, तो हाइड्रोक्लोरिक अम्ल का छोड़ना बंद कर दिया जाता है। इस मिश्रण को तीन घंटे तक रखने के बाद बुल्वेनर छनने पर छान लिया जाता है। तब उसे आसुत जल (प्रति २५० ग्राम शुष्क शिलषि के लिए २ लिटर) से धोया जाता है। पर इस बातकी सावधानी रखी जाती है कि अवक्षेप चिटख न जाये। अब शिलषि का ०.२ नार्मल हाइड्रोक्लोरिक अम्ल में आलम्बन किया जाता है और उसे साधारण ताप पर दो दिन तक रखा रहने दिया जाता है। उसे फिर छान कर पहले की भाँति धोया जाता है। यह प्रक्रिया तब तक की जाती है जब तक छन कर टपकने वाले द्रव में मेथिल आरेंज आता रहता है। तत्पश्चात् उसे ११०° तक गरम वायु-ऊष्मक में सुखा लिया जाता है।

इन वैज्ञानिकों ने यह ज्ञात किया कि इस प्रकार से शिलषि बनाने पर भी उसमें से मेथिल आरेंज फूट पड़ता है। इसके स्थान पर उन्होंने ०.०५ प्रतिशत जलीय पेलागोनीन क्लोराइड (चटकीले लाल रंग के डहलिया की पंखुड़ियों से बनाया गया (Coltness Gem", cf Willstatter and Mallison) का उपयोग किया और उसे अधिक अच्छा पाया। लिडेल एवं राइडन (५९) ने भी इस काम के लिए एक सूचक बताया है:—३:६ डाइसल्फो- α -नेफ़थलीन-ऐज़ो-नार्मल फ़िनाइल- α -नेफ़थल अमीन ("R-NH₂")

आइशरउड (६०) ने फलों के कार्बनिक अम्लों से कार्य करके ज्ञात किया कि आक्सैलिक अम्ल को उपर्युक्त विधि से बनायी शिलषि में से अलग करना कठिन था। अतः आपने उपर्युक्त विधि में इस प्रकार परिवर्तन किया—

(क) दस नार्मल हाइड्रोक्लोरिक अम्ल से अवक्षेपण करते समय, अम्ल की काफ़ी अधिक मात्रा डाल दी गयी जिससे शिलषि में एल्युमिनियम (Al⁺⁺⁺) और लौह (Fe⁺⁺⁺) की मात्रा क्रमशः ०.००४ एवं ०.००२ से अधिक न हो। इस प्रकार इनको लगभग निकाल दिया गया।

(ख) श्लिषि को दो सप्ताह तक सूखने दिया गया। ऐसा करने से श्लिषि के अधिशोषक गुण-धर्म विशेष रूप से विकसित हो जाते हैं।

(ग) इतने दिनों रखने के बाद श्लिषि को दस नार्मल हाइड्रोक्लोरिक अम्ल में दुबारा आलम्बित किया गया और उसे रात भर तक रखा रहने दिया गया। तत्पश्चात्, उसे छानकर ५ नार्मल हाइड्रोक्लोरिक अम्ल से फिर धोया गया; इसके बाद, आसुत जल से और पुनः परिशुद्ध^१ ऐलकोहल से, जिसमें एक प्रतिशत दस नार्मल सल्फ्यूरिक अम्ल मिला हुआ था। सबसे बाद में उसे ईथर से धोया गया।

ट्रिस्ट्रम (६१) ने प्रोटीन के ऐसीटो एवं अमीनो-अम्लों से कार्य करते समय बताया कि सिलिका-श्लिषि को ठीक से तैयार करना सबसे बड़ी समस्या है। आइशरउड की भाँति आपने श्लिषि को दो सप्ताह तक यों ही रखने की विधि को ठीक पाया। पर सिलिकेट में आपने निम्न ताप (4°) पर अम्ल डालना ठीक समझा। ऐसा करने से उसके कण महीन हो जाते हैं। आपने यह भी ज्ञात किया कि इस विधि से तैयार की गयी श्लिषि द्वारा ऐसीटो एवं अमीनो-अम्लों को निकालने में, और आइशरउड की विधि से बनी श्लिषि में से निकलने में जो अंतर था वह श्लिषि के जलीय मार्ग पर निर्भर था। साधारण रूप से ९५ प्रतिशत तक पदार्थों की प्राप्ति होती थी; इसमें केवल एक अपवाद था ऐसीटो-मेथायोनीन का। पता नहीं क्यों, यह बहुत ही कम मात्रा में निकल पाता था।

सहायक द्रव्य रूप में जलज उद्भिज्ज युक्त मिट्टी

यह स्पष्ट है कि सिलिका-श्लिषि आदर्श सहायक-द्रव्य नहीं है। पिछले कुछ वर्षों में जलज उद्भिज्ज युक्त मिट्टी का उपयोग किया गया है और इससे अधिक अच्छे फल प्राप्त हुए हैं। उदाहरणतया, मार्टिन (६२) ने कीसेलगुह^१ का उपयोग किया। आपने स्तम्भ को भरने की भी एक विशेष विधि बतायी, क्योंकि जल में इसको जला कर स्तम्भ-धारक में डालने से यह ठीक प्रकार नहीं बैठ पाती। इसके लिए एक सरल यंत्र का उपयोग किया गया। एक डिस्क में लगभग एक-एक मिली-मीटर के छेद किये गये और उसके बीच के भाग को एक लंबे तार से जोड़ दिया गया। तार स्तम्भ से काफ़ी अधिक लंबा था। डिस्क का व्यास स्तम्भ के अंद-

रूनी व्यास से कुछ कम होता है। कीसेलगुहुर को द्रव में घेंप^१ कर स्तम्भ-धारक में डालते हैं और उपर्युक्त यंत्र को चलाकर कीसेलगुहुर को केवल एक स्थान पर नहीं जमने देते। जब इस यंत्र को धीरे से नीचे की ओर ढकेला जाता है तो नीचे वाला कीसेलगुहुर धीरे से दब जाता है। अतः स्तम्भ भरने में, पहले आलम्बित पदार्थ को सजातीय कर लेते हैं और उसके बाद उसे धीरे से दबा देते हैं। अतः स्तम्भ के ठीक से भरने की विधि यह है —

पहले आलम्बन को सजातीय करते हैं, बाद में जमे पदार्थ को दबाते हैं। फिर इन दोनों प्रक्रियाओं को इसी क्रम में बार-बार किया जाता है। आवश्यकता से अधिक द्रव को या तो पिपेट से निकाल लिया जाता है या उसे नीचे बहने दिया जाता है। द्रव में आलम्बित पदार्थ को स्तम्भ में धीरे-धीरे डाला जाता है। ऐसा तब तक किया जाता है जब तक कि स्तम्भ भर न जाये। इसी विधि से “सीला-इट”^२ अथवा “सुपरसेल”^३ को भी भरा जा सकता है।

विभाजन-क्रोमैटोग्राफी के उपयोग

जैसे ही यह नवीन विधि निकाली गयी वैसे ही इसके कई महत्वपूर्ण उपयोग ज्ञात हुए। अब इनका यहाँ वर्णन किया जायेगा।

प्रोटीन के अमीनो-अंत-समूहों का निर्धारण (संनार)

प्रोटीन और पेप्टाइड में स्वतन्त्र अमीनो-समूहों को ज्ञात करने की विधि (६३) में गार्डन, मार्टिन एवं सिन्ज द्वारा मौलिक रूप से तैयार की गयी सिलिका-श्लिषि का प्रयोग किया गया। प्रोटीन पर पहले २:४ डाइनाइट्रोफ्लोरो बेंजीन की प्रतिक्रिया की जाती है। तत्पश्चात् प्रोटीन के जल-विश्लेषण से उसके अवयव अमीनो-अम्ल अथवा सरल पेप्टाइड प्राप्त किये जाते हैं। प्रतिस्थापित अमीनो-अम्ल पर अधिकतर जल-विश्लेषण की प्रतिक्रिया नहीं होती; अतः इन अम्लों को इन्हीं परिस्थितियों में ज्ञात कर लिया जाता है। तत्पश्चात् उतने ही समय तक जल-विश्लेषण होने दिया जाता है। अब समस्या यह होती है कि डाइनाइट्रोफ्लोरो (डा० ना० फि०) अमीनो-अम्लों को किस प्रकार पृथक्

किया जाये। सैंगर ने अधिशोषण क्रोमैटोग्राफी द्वारा ऐसा करने का प्रयत्न किया, पर उसे सफलता नहीं मिली। डा० ना० फि० अमीनो-अम्ल मैनीशियम आक्साइड और एल्यूमिना पर विच्छेदित हो जाते हैं। विभाजन-क्रोमैटोग्राफी की विधि अधिक सफल रही और लगभग सभी डा० ना० फि० अमीनो-अम्लों को उपयुक्त विलायकों के चयन से पृथक् कर लिया गया।

अभी हाल में ही पेरोन (६४) ने सिलिका-श्लिषि के स्थान पर सबसे मोटे प्रकार के “सीलाइट ५४५” (Johns—Manville Co., Ltd., Artillery House, Artillery Row, London) का उपयोग किया है। पेरोन ने भी छिद्रयुक्त डिस्क वाले यंत्र का स्तम्भ भरने में उपयोग किया। आप ने काँच की सीधी लंबी नली का स्तम्भ-धारक की भाँति उपयोग किया। उसके निचले भाग को कार्क से बंद कर दिया गया और सीलाइट को कार्क के ऊपर भरा गया। जब स्तम्भ भर गया तो कार्क को निकाल लिया गया। यदि स्तम्भ को मजबूती से भरा जाये तो उसके नीचे अन्य वैज्ञानिकों द्वारा उपयुक्त छिद्रमय सहायक डिस्क लगाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। पेरोन ने केवल दो विलायकों का उपयोग किया—ईथर और क्लोरोफार्म। किन्तु इनके साथ सीलाइट में निम्नलिखित PH वाले तीन प्रतिरोधों में से किसी एक का उपयोग किया गया—४.०, ६.५ अथवा ७.०। आपके २०×३ सेंमी० वाले बड़े स्तम्भ में लगभग ६० ग्राम सीलाइट लगती है और इससे लगभग ३५० मिलीग्राम डा० न० फि० प्रोटीन के जल-विश्लेषित पदार्थों को पृथक् किया जा सकता है।

दोनों वैज्ञानिकों ने “सा” मानों की सारणी दी है। पार्टिज एवं स्वेन (६) ने कुछ डा० ना० फि० अमीनो-अम्लों के पलटे हुए फ्रेज^१ के विभाजन-क्रोमैटोग्राम दिये हैं। इसमें व्यापारिक क्लोरीनयुक्त रबर “ऐलोप्रीन” (I C I Ltd, अति उच्च श्यानता वाले ग्रेड E) का सहायक पदार्थ के रूप में उपयोग किया गया। नार्मल-ब्यूटेनाल को स्थिर फ्रेज में रखा गया और जलीय प्रतिरोध-विलयनों को गतिशील फ्रेज में। क्लोरीन-युक्त रबर को इस प्रकार तैयार किया गया—उसे नार्मल ब्यूटेनाल (४ मिलीलीटर प्रति १० ग्राम क्लोरीनयुक्त रबर) के पहले से ही नार्मल ब्यूटेनाल से संतृप्त, ०.२ मोलर साइट्रेट—प्रतिरोध के आलम्बन

से हिलाया गया। इससे जो घेंप^१ बना, उसे स्तम्भ में साधारण विधि से भरा गया। स्तम्भ-धारक के नीचे थोड़ा हलका दाब रखने से पदार्थ आसानी से बैठ जाता है। लाइसीन, ऐस्परागीन, सीरीन, ऐस्पार्टिक अम्ल, ऐलानीन, प्रोलीन, वैलीन एवं ल्यूसीन के डा० ना० फि० व्युत्पन्नों की प्राप्ति लगभग परिमाणात्मक रूप से होती है। टायरोसीन, फिनाइल-ऐलानीन और ग्लाइसीन के डा० ना० फि० व्युत्पन्नों की प्राप्ति इतनी अच्छी नहीं होती।

अमीनो-अम्लों के डा० ना० फि० व्युत्पन्नों के कागज़-क्रोमेटोग्राम पर सा अ मान भी ज्ञात है (देखिए, पठनीय सामग्री-उल्लेख ६५, ६६, ६७)।

मेथिलयुक्त शर्कराओं का पृथक्करण (बेल)

इस विधि (६८) में भी गार्डन, मार्टिन एवं सिन्ज की भाँति तैयार की गयी सिलिका का उपयोग होता है, पर उसमें सूचक का प्रयोग नहीं किया जाता। स्तम्भ तैयार करने के लिए, सिलिका-डिलिष का थोड़ा भाग घूम-कक्ष^२ में खरल में पीस लिया जाता है। तत्पश्चात् भार के अनुसार उसमें आधा जल मिलाया जाता है। और उसे फिर पीसा जाता है। अब नम सिलिका का क्लोरोफार्म के साथ घेंप बनाया जाता है और उसे साधारण प्रकार के स्तम्भ-धारक में उँडोला जाता है। जो द्रव ऊपर निथर आता है, उसे बहने दिया जाता है। स्तम्भ की लगभग दुगुनी ऊँचाई तक आ जानेवाले क्लोरोफार्म को फिर बहने दिया जाता है जिससे चिकनाई पूर्णतया निकल जाये। अब प्रयोग के लिए स्तम्भ तैयार है।

बेल ने ऐसे तीन स्तम्भ तैयार किये—प्रत्येक स्तम्भ एक सें०मी० व्यास का था और उसमें २.५ ग्राम सिलिका थी। तत्पश्चात् २:३:६ ट्राइमेथिल ग्लू-कोज़ और २:३:४:६ टेट्रामेथिल ग्लूकोज़ के (१ मिलीग्राम प्रति मिलीलीटर क्लो-रोफार्म में) विलयनों के एक-एक मिलीलीटर को प्रत्येक स्तम्भ में लगाया गया। तत्पश्चात् एक स्तम्भ में भरकर आनेवाले क्लोरोफार्म को प्रत्येक स्तम्भ में बहने दिया गया। अब एक स्तम्भ तैयार है। दूसरे स्तम्भ में एक स्तम्भ में आनेवाले क्लोरोफार्म की चौगुनी मात्रा को बहने दिया गया। तीसरे स्तम्भ को औँधा कर धर दिया गया। पहले दो स्तम्भों को बाहर निकाल लिया गया और उन्हें ११०°

पर सुखाकर ठंडा होने के लिए रख दिया गया। तत्पश्चात् सारे स्तम्भ में २ प्रतिशत ऐलकोहलीय $\rightarrow$ नैफ़थाल की बूंदें रखी गयीं; इसी प्रकार सांद्र सल्फ्यूरिक अम्ल की सारे स्तम्भ में बूंदें रखी गयीं। मॉलिश-परख' के अनुसार जहाँ पर भी शर्करा होती है, वहाँ गहरा बैजनी रंग आ जाता है। दोनों स्तम्भों के ऊपर एक बड़ी स्पष्ट पट्टी (ट्राइ) मिलती है। पहले स्तम्भ में नीचे की ओर एक दूसरी पट्टी (टेट्रा) की मिलती है, पर यह कुछ फैली हुई होती है। यदि सिलिका-श्लिषि का नमूना अच्छा है तो दूसरे स्तम्भ में केवल ट्राइ की पट्टी होनी चाहिए, क्योंकि टेट्रा-पट्टी को बाहर निष्कासित हो जाना चाहिए। यदि दूसरे स्तम्भ में टेट्रा की पट्टी दिखाई देती है, तो तीसरे स्तम्भ में, एक स्तम्भ में आनेवाले क्लोरोफ़ॉर्म की आठ गुनी मात्रा को बहने दिया जाता है। ऐसा करने पर भी यदि उसमें टेट्रा की पट्टी दिखाई देती है तो सिलिका के नमूने को बेकार करार कर दिया जाता है।

ट्राइमेथिल शर्करा से टेट्रामेथिल शर्करा की ५०-२०० मिलीग्राम को परिमाणात्मक रूप से पृथक् किया जा सकता है, यदि मिश्रण में उनका आणविक अनुपात १-२०० हो। इस विधि से डाइमेथिलशर्करा को भी पृथक् किया जा सकता है। बेल ने कुछ आवश्यक सावधानियों का वर्णन किया है जिससे चिकनाई अथवा कार्बनिक मैल, जैसे ऐसीटोन के संघनन-द्रव्य,^१ स्तम्भ में प्रवेश नहीं कर पाते। विलायकों का आसवन ऐसे उपकरण में किया जाता है जिसमें सब शीशा ही हो और क्लोरोफ़ॉर्म को जल से भली भाँति धोया जाता है।

पौधों से कार्बनिक अम्लों का पृथक्करण

आइशरउड (६०) ने ज्ञात किया कि जब पौधों से कार्बनिक अम्लों को पृथक् करना हो, तो सिलिका-श्लिषि को बनाने की विधि में थोड़ा अंतर करना पड़ता है। यदि इस काम के लिए साधारण रूप से बनी श्लिषि का उपयोग किया जाय तो कार्बनिक अम्लों के आयनों के कारण पट्टियाँ बहुत चौड़ी बनती हैं, क्योंकि बढ़ती हुई तनुता के साथ विभाजन-गुणक भी काफी तेजी से बढ़ता है; सिलिका-श्लिषि के साथ में सूचक भी जल्दी ही निकल जाता है। इन कारणों से आइशरउड ने

अपनी सिलिका-श्लिषि में ०.५ नार्मल सल्फ्यूरिक अम्ल को मिला लिया और स्तम्भ के बहिरागामी^१ में सूचक की पतली धारा को छोड़ा। अतः पट्टियों के बनने के आरंभ और अंत को बहिरागामी में रंग-परिवर्तन से ज्ञात किया गया। नार्मल ब्यूटेनाल और क्लोरोफार्म के मिश्रण का गतिशील फ्रेज की भाँति उपयोग किया गया। मौलिक शोध-निबंध में अम्लों—ऐसीटिक, फ्युमारिक, ग्लूटारिक, फार्मिक, सक्सिनिक, ट्रान्सऐकोनीटिक, मैलोनिक, अक्सैलिक, ट्राइकार्बालिक, ग्लाइकालिक, मैलिक, साइट्रिक एवं टार्टारिक—के परीक्षण फलों का वर्णन किया गया है। इनमें से कुछ वाष्पशील हैं और आइशरउड ने उनके निःसारण^२ की ऐसी विधि का विकास किया है जिससे उनका पृथक्करण साधारण ताप पर ही हो जाता है। विस्तृत वर्णन के लिए उनका मौलिक शोध-निबंध देखिए।

बुलेन, वार्नर एवं बुरेल (६९) ने आइशरउड की विधियों में थोड़ा परिवर्धन किया है। इसमें नार्मल प्रोपेनाल के क्लोरोफार्म में अनुपात को विलायक में थोड़ा-थोड़ा बढ़ाया गया है। डोनल्डसन, टुलेन एवं मार्शल (७०) ने इन दोनों के अनुपात में बराबर परिवर्तन के लिए एक पात्र (क) लिया; इसमें ५० प्रतिशत नार्मल-ब्यूटेनाल-क्लोरोफार्म को रखा; यह पात्र दूसरे पात्र (ख) से मिला हुआ था और इसमें शुद्ध क्लोरोफार्म भरा था। पात्र (ख) में मिश्रण होता है और जो विलायक पात्र (ख) में से निकलता है उसे स्तम्भ के ऊपर डाला जाता है।

आल्म, विलियम्स एवं टिज़ेलियस (११२) ने निष्कासक के अनुपात में इस बराबर परिवर्तन को “प्रवणता-निष्कासन”^३ की संज्ञा दी है और इसका पूरा विवरण दिया है।

माटगोमरी (७१) ने सिलिका-श्लिषि और क्लोरोफार्म-ब्यूटेनाल विलायकों के उपयोग से लैक्टिक अम्ल के एक-अंश, द्वि-अंश और त्रि-अंश को उसके बहु-अंशों^४ से पृथक् किया है। अब अधिक तेज़ भास्मिक^५ आयन-विनिमय-कारी पदार्थों के आविष्कार से संभवतः कार्बनिक अम्लों का पृथक्करण अधिक सुगमता से हो सकेगा।

1. Effluent

2. Extraction

3. Gradient Elution

4. Polymers

5. Strongly basic

परिवर्धित^१ विभाजन-क्रोमैटोग्राफी

अब ऐसी दो विधियों का वर्णन किया जायेगा जिसमें प्रक्रिया केवल सरल विभाजन ही नहीं है। पहली विधि तो वह है जिसका लेह (७२) ने वर्णन किया है। आपने पेनीसिलीनों को उनके त्रि-अमीन लवणों के रूप में पृथक् किया। एक प्रयोग में एथिल ऐसीटेट (१५०० मिलीलीटर) में सिलिका-डिलिषि (५०० ग्राम) के आलम्बन की जल (३५० मिलीलीटर) के साथ पन्द्रह मिनट तक प्रक्रिया की गयी। तत्पश्चात् घेंप (गारे) में नार्मल-एथिल हेक्सामेथिलीन इमीन (२५ मिलीलीटर) को घेंप में मिला दिया गया। इसको साधारण रूप से स्तम्भ-धारक में डाला गया और बहिरागामी एथिल ऐसीटेट को स्तम्भ में बहने दिया गया, जब तक उसकी नियत ऊँचाई न बन गयी। शिलिषि पर उदासीन कार्बनिक अम्लों की कोई प्रतिक्रिया नहीं होती। पेनीसिलीनों के मिश्रण को एथिल ऐसीटेट में घोलकर लगाया गया और जब वे उपर्युक्त स्तम्भ में नीचे खिसकते हैं तो उनके अमीन लवण बनते जाते हैं।

बस्टल, डेवीस एवं वेल्स (७३) ने सेल्युलोज स्तम्भों पर धातुओं का पृथक्करण किया है। इसमें विभाजन, अधिशोषण और चयनशील निःसारण^२ सभी का संभवतः उपयोग होता है। सहायक द्रव्य छनने कागज की लुगदी है जो उबलते हुए तनु नाइट्रिक अम्ल में थोड़ी देर डालकर विशेष रीति से साफ की जाती है। यह लुगदी कार्बनिक विलायक में मिलाकर स्तम्भ में भरी गयी। धातुओं का जलीय विलयन (साधारणतया हाइड्रोक्लोरिक अम्ल में) स्तम्भ के ऊपर लगाया गया। तत्पश्चात् विलायक को बहने दिया गया। चूँकि धातुएँ पृथक् हो जाती हैं, अतः वे स्तम्भ में नीचे खिसकने लगती हैं और अंत में वे निष्कासक के साथ निकल आती हैं; अब इनको उपर्युक्त विधि से प्राप्त किया जा सकता है।

उदाहरणतया, निकल, कोबाल्ट और ताम्र के पृथक्करण एवं परिमापन में स्टील अथवा खनिज पदार्थों के ०.२ ग्राम नमूने को तनु हाइड्रोक्लोरिक अम्ल में घोलकर स्तम्भ पर लगा दिया गया। मेथिल प्रोपिल कीटोन (१०० भाग), ऐसीटोन (३० भाग), जल (४ भाग) और सांद्र हाइड्रोक्लोरिक अम्ल (१ भाग) को मिलाकर विलायक बनाया गया। इससे निष्कासन करने पर सबसे पहले

पीली पिट्टी के रूप में लोह निकलता है; तत्पश्चात्, ताँबे की अम्बर पट्टी निकलती है। जब इन दोनों का निष्कासन हो जाता है तो विलायक बदल दिया जाता है—अब यह मेथिल प्रोपिल कीटोन रहता है जिसमें आयतन के अनुसार २ प्रतिशत हाइड्रोक्लोरिक अम्ल रहता है। यह विलायक कोबाल्ट को निकल से पृथक् कर देता है। इस विधि से प्राप्त इन धातुओं के परिमाणन-मान साधारण विधि से किये गये परिमाणन-मानों से भली-भाँति मिलते थे।

दूसरे विलायकों का उपयोग करके अन्य धातुओं का भी पृथक्करण किया गया है। बर्स्टल एवं वेल्स (७४) के बाद के शोध-निबंध में इसी विधि से यूरेनियम के पृथक्करण एवं परिमाणन का वर्णन किया गया है।

वसीय अम्लों^१ का पृथक्करण

कई वैज्ञानिकों ने मौलिक विभाजन-स्तम्भ का परिवर्धन करके वसीय अम्लों को पृथक् करने का प्रयास किया है। एल्सडन (७५) ने इनका विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। यहाँ पर इनका वर्णन नहीं किया जा रहा है, क्योंकि मार्टिन की गैस-द्रव विभाजन-विधि इस कार्य के लिए अधिक उपयुक्त है। एल्सडन ने यह बताया कि विभिन्न कार्बनिक अम्लों एवं जल में एक ही सजातीय श्रेणी के पदार्थों का विभाजन-गुणक, कार्बन परमाणुओं की संख्या के साथ बढ़ता जाता है। अतः सरल विभाजन विधि से उनके समांशों^२ का अथवा पाँच कार्बन परमाणुओं से अधिक वसीय अम्लों का पृथक्करण अच्छी तरह नहीं हो पाता। अतः मोयल, बाल्डविन एवं स्कैरिसब्रिक (७६) ने ऐसी सिलिका-शिलषि का उपयोग किया जिसमें क्षारीय फ़ास्फ़ेट प्रतिरोध अधिक मात्रा में थे; क्लोरोफ़ार्म एवं नार्मल ब्यूटेनल का गति-शील विलायक रूप में प्रयोग किया गया। इस विधि से उन्होंने आठ कार्बन परमाणुओं वाले वसीय अम्लों को पृथक् कर लिया। पेटर्सन एवं जान्सन (७७) ने बेंजीन एवं सान्द्र सल्फ़्यूरिक अम्ल का विलायक रूप में प्रयोग किया; इन वैज्ञानिकों ने सिलिका के स्थान पर सीलाइट ५४५ का भी सहायक-द्रव्य के स्थान पर उपयोग किया। इस प्रकार आप कुछ अधिक परमाणुओं वाले वसीय अम्लों को पृथक् कर सके। रैमजे एवं पैटर्सन (७८) ने विलायक के लिए फ़र्फ़ूराइल ऐल-

कोहल और २-अमीनो पिरीडीन, एवं नार्मल हेक्सेन का उपयोग किया; सहायक-द्रव्य के लिए “सिलिसिक अम्ल” (Mallin Krodts S. L. Grade के अवक्षेपित चूर्ण) का उपयोग किया गया। इस प्रकार आपने १२, १४, १६ एवं १८ कार्बन परमाणुओं वाले वसीय अम्लों के मिश्रण को पृथक् किया; ११, १३, १५, १७ एवं १९ परमाणु वाले अम्ल भी पृथक् किये गये। पर १८ एवं १९ परमाणु वाले अम्लों का मिश्रण पृथक् नहीं किया जा सका। इन्हीं वैज्ञानिकों ने आइसोआक्टोन एवं २, २, ४—ट्राइमेथिलपेंटेन का भी विलायक रूप में उपयोग किया। इस प्रकार कैप्रिक, पेलारगोयनक, कैप्रिलिक, एनैन्थिक, कैप्रोइक और वैलीरिक अम्लों के मिश्रण को पृथक् (७९) किया गया।

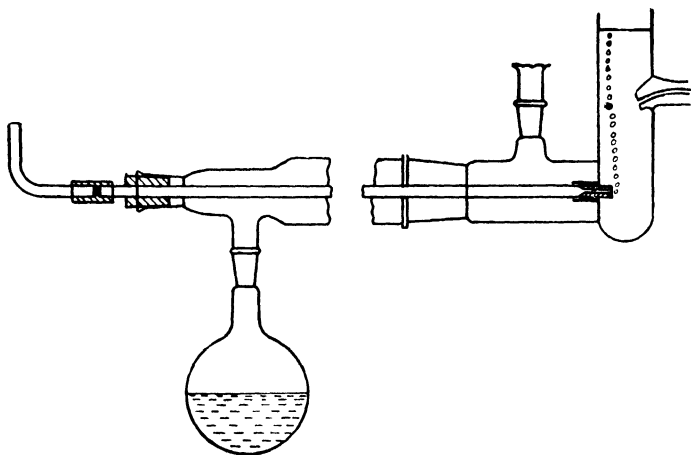
हार्ड एवं मार्टिन (८०) ने “पलटी हुई फ्रेज” की द्रव-द्रव विभाजन-विधि का उपयोग किया, इसमें हाइड्रो सुपरसेल की डाइक्लोरो डाइमेथिल साइलेन से प्रक्रिया करके उसे जल-आकर्षक बना दिया गया था। विलायकों के रूप में मेथेनाल-आक्टोन और जलीय ऐसीटोन, एवं औषधीय पैराफीन का उपयोग किया गया। बाद वाले विलायक का उपयोग करके लारिक से स्टीयरिक (सीधी शृंखला वाले) अम्लों तक का पृथक्करण कर लिया गया।

यह याद होगा कि बोल्डिघ (८१) ने भी छनने-कागज पर ‘पलटे हुए फ्रेज’ का उपयोग किया था। छनने कागज को वल्कनाइज किये रबर के लेटेक्स^३ (तनु) से भिगो लिया गया था; तत्पश्चात् उसे वायु में सुखा कर ऐलकोहल से और उसके बाद ऐसीटोन से एक बार धो कर हवा में सुखा लिया गया था। प्रयोग करने के पहले तक उसे ऐसीटोन पर ही रखा रहने दिया गया था। बोल्डिघ ने स्टीयरिक, पामिटिक, मिरिस्टिक, लारिक, ओलीक और इर्यूरिक अम्लों के अलग-अलग सा अमान दिये हैं। विलायक रूप में केवल मेथेनाल अथवा मेथेनाल-ऐसीटोन (५०-५०) का उपयोग किया गया।

गैस-द्रव विभाजन-क्रोमैटोग्राफी

जेम्स एवं मार्टिन ने १९५२ में इसका सबसे पहले वर्णन किया। स्तम्भ-धारक ५ फुट लंबी शीशे की नली थी और इसका व्यास ४ मिलीमीटर था। इसमें

कीसेलगुहुर भरा गया उसमें थोड़ा-सा सिलीकोन भी मिला दिया गया था, जिससे वह द्रव फ़ेज़ बन जाय। भरे हुए स्तम्भ की लंबाई ४ फ़ुट थी। गैस फ़ेज़ के रूप में नाइट्रोजन-धारा का उपयोग किया गया। जिस पदार्थ का विश्लेषण होने वाला था उसको वाष्प रूप में परिवर्तन करके नाइट्रोजन-धारा के साथ ही प्रविष्ट कर दिया गया। स्तम्भ के चारों ओर एक ऐसी व्यवस्था होती है जिससे उसमें उबलता द्रव सारे उपकरण के ताप को नियत रख सके। पृथक् किये हुए मिश्रण के अवयव नाइट्रोजन-धारा के साथ बाहर निकलते हैं, धारा एक अनुमापन-सेल में बुलबुलाती है। इन वैज्ञानिकों ने सेल में ऐसी युक्ति लगायी जिससे अनुमापन अपने आप हो सके। यहाँ पर अन्य पहचान विधियों का भी उपयोग हो सकता है। चित्र १६ में उनके द्वारा उपयुक्त उपकरण की व्यवस्था दिखायी गयी है।



चित्र १६—गैस-द्रव विभाजन विधि में उपकरण की व्यवस्था (देखिए—पठनीय सामग्री - उल्लेख सं० ८२, जेम्स एवं मार्टिन से परिवर्धित)

इस विधि की उपयोगिता इससे स्पष्ट हो जायेगी—इन वैज्ञानिकों ने ११ फ़ुट लंबे स्तम्भ से १३७° तापक्रम पर ऐसीटिक, प्रोपियानिक, आइसोब्यूटिरिक,

1. Titration Cell

नार्मल ब्यूटिरिक, ट्राइमेथिल ऐसीटिक, आइसोवैलीरिक, मेथिल एथिल ऐसीटिक और नार्मल वैलीरिक अम्लों को पूर्ण रूप से पृथक् कर लिया और इसमें केवल दो घंटे लगे।

चार मिलीमीटर चौड़ी नली वाले इस उपकरण में श्रेणी के निम्न अम्लों की अधिक से अधिक एक मिलीग्राम मात्रा को लिया जा सकता है। कम से कम मात्रा वह हो सकती है जिसका प्रयोग में लायी अनुमापन-विधि से ज्ञान हो सके; इस प्रयोग में यह कम से कम मात्रा ०.०२ मिलीग्राम थी क्योंकि ब्यूरेट में ०.०४ नार्मल सोडियम हाइड्राक्साइड भरा गया था। स्तम्भ के गोल-काटीय^१ क्षेत्रफल को बढ़ाया जा सकता है जिससे अधिक मात्रा में अम्लों को पृथक् किया जा सके।

स्तम्भ की तैयारी

कीसेलगुहुर (Celite 454, John Manville) के कण विभिन्न नाप के होते हैं। सूक्ष्म कणों को १८ सेंमी० लंबे बीकर में कीसेलगुहुर का आलम्बन करके पृथक् किया जा सकता है क्योंकि ये तीन मिनट में नीचे नहीं बैठ पाते और उनको निथार कर फेंका जा सकता है। जो पदार्थ नीचे बैठ जाता है उसे तीन घण्टे तक ३००° पर मफ़ल भ्राष्ट्र^२ में गरम किया जाता है। तत्पश्चात् उसे सांद्र हाइड्रोक्लोरिक अम्ल से धोकर क्षारीय अशुद्धियों को दूर कर दिया जाता है। हाइड्रोक्लोरिक अम्ल को दूर करने के लिए उसे बार-बार जल से धोया जाता है और अन्त में पदार्थ को १४५° पर ऊष्मक में सुखा लिया जाता है।

द्रव फ़ेज़ डी०सी० ५५० सिलिकान (Albright and Wilson, Oldbury, Birmingham) होता है। जब इसे वसीय अम्लों के पृथक्करण में इस्तेमाल करना होता है तो इसमें भार के अनुसार १० प्रतिशत स्टीयरिक अम्ल भी होता है। स्टीयरिक अम्ल के कारण पृथक्करण अच्छा होता है, क्योंकि सम्भवतः इसकी उपस्थिति से वसीय अम्ल के अंश टूट^३ जाते हैं। स्तम्भ को भरने के पहले द्रव फ़ेज़ को भार के अनुसार १ : २ (द्रव : ठोस) के अनुपात में कीसेलगुहुर से मिला लिया जाता है।

स्तम्भ-धारक के एक सिरे को खींचकर मोटी दीवार वाली केश-नली (लगभग

१।४ मिलीमीटर व्यास वाली) बना ली जाती है। तत्पश्चात् साइकिल की वाल्व वाली रबर की पतली नली के छोटे टुकड़े को इसमें घुसेड़ कर उसे उस बिन्दु पर जल-रोधक^१ बना लिया जाता है जहाँ से वह अनुमापन-सेल में प्रवेश करती है। स्तम्भ को भरने के पहले स्तम्भ-धारक के नीचे “फाइबरग्लास”^२ के सूत (900।1।4; Fibreglass Ltd., Firhill, Glasgow, N. W. से प्राप्य) की छोटी गद्दी रख दी जाती है जिससे कीसेलग्जुर केश-नली तक न पहुँच सके; इस प्रकार, केश नली को हँधने से बचा लिया जाता है। स्तम्भ के दूसरे सिरे पर एक कीप लगा दी जाती है और उसे रबर की पतली नली से जोड़ दिया जाता है। कीप को कीसेलग्जुर मिश्रण से आधा भर लिया जाता है। तब स्तम्भ-धारक को ऊर्ध्वाधर स्थिति में रखा जाता है और उसे ऐसे वैद्युत मोटर से जोड़ दिया जाता है जो उसे हिला सके। जेम्स और मार्टिन ने जिस मोटर का उपयोग किया था, वह एक मिनट में सात हजार गोल चक्कर करके सात हजार बार नली को चपटी^३ तरह से हिलाता था। ऐसा करने से कीसेलग्जुर धीरे-धीरे नीचे बैठने लगता है और स्तम्भ में बराबर धक्का लगने के कारण वह अच्छी तरह से बैठने लगता है। यह भरने की प्रक्रिया तब तक चलती रहती है जब तक स्तम्भ ४ फुट लम्बा नहीं हो जाता। तत्पश्चात्, “फाइबर ग्लास” की दूसरी गद्दी रख दी जाती है जिससे कीसेलग्जुर के विभिन्न स्तम्भ अपने स्थान में रहें।

यदि अधिक लम्बे स्तम्भ को तैयार करना है तो इसी भाँति भरे हुए स्तम्भों को रख कर शीशे के एक बड़े बाष्प पात्र^४ में पास-पास रख दिया जाता है; उनके सिरों को मोटी दीवार वाली केश-नलियों से अर्द्ध-चन्द्राकार रूप में जोड़ दिया जाता है। एक ही पात्र में रखने से उनका तापक्रम एक समान रखा जा सकता है।

वाष्प-पात्र

वाष्प पात्र को एक इंच व्यास वाली शीशे की नली से बनाया जाता है और उसके जोड़ घिसे हुए होते हैं जैसा चित्र १६ में दिखाया गया है। स्तम्भ-धारक एक ओर तो साइकिल के वाल्व में उपयुक्त रबर नली से जुड़ा होता है और दूसरी ओर

- | | | |
|------------------|---------------|---------------|
| 1. Water-tight | 2. Fibreglass | 3. Horizontal |
| 4. Vapour Jacket | | |

रबर की डाट के छेद से। अतः वाष्प पात्र में उबलने वाले द्रव का चयन सीमित होता है—केवल वे ही द्रव उपयोग में लाये जा सकते हैं जो रबर को खराब न करें। इसके लिए जल के अतिरिक्त तीन उपयुक्त द्रव हैं—मेथेनाल, सेलो साल्व' एवं एथिलीन ग्लाइकोल; इन के क्वथनांक क्रमशः 65.4° , 137° एवं 200° हैं। क्वथनांक का निर्णय पृथक् किये जाने वाले पदार्थों के वाष्प-दाबों को ध्यान में रखकर किया जाता है। ये पारे के १० और १००० मिलीमीटर दाब के बीच में होते हैं। उदाहरणतया, फ़ार्मिक से वैलीरिक अम्लों तक के लिए जल उपयुक्त है और वैलीरिक से लारिक अम्लों के लिए सेलोसाल्व उपयुक्त है।

स्वतः अनुमापन उपकरण^१

इसके लिए मौलिक शोध-निबन्ध पढ़िए।

प्रयोग करने की विधि

सबसे पहले उपकरण को उस ताप पर लाना चाहिए जिस पर प्रयोग करने का निर्णय किया गया है। तब वसीय अम्लों के नमूने को "फ़ाइबर ग्लास" की गद्दी पर सूक्ष्म-पिपेट द्वारा लगा दिया जाता है। नली के चौड़े सिरे पर रखे नमूने में जल बिलकुल नहीं होना चाहिए, अन्यथा पृथक्करण नहीं हो पाता। इन वैज्ञानिकों ने इन अम्लों के सोडियम लवणों से जलरहित अम्ल बनाने की विधि का भी वर्णन किया है।

तत्पश्चात्, नाइट्रोजन धारा का प्रवेश किया जाता है। सुगमतम विधि तो यह है कि उसे सिलिंडर में से ले लिया जाये और उसे दाब स्थिर रखने वाले एवं प्रवाह-मापी उपकरणों से जोड़ दिया जाये। स्तम्भ तक पहुँचने पर गैस को सुखा भी लेना चाहिए। उसके प्रवाह को २० से ५० घन सेंटीमीटर प्रतिमिनट तक रखा जाता है। यह याद रखना चाहिए कि प्रवाह की गति को घटाने से पृथक्करण तो अधिक अच्छे होते हैं, पर प्रयोग करने के समय में वृद्धि हो जाती है। तत्पश्चात् (रेकार्ड लेने वाले ड्रम को नियन्त्रित करने वाली) वैद्युत-घड़ी को चला दिया जाता

है और अनुमापन सेल में ८ मिलीलीटर जलीय फ्रीनोल रेड सूचक को बहने दिया जाता है। यदि नियन्त्रण अपने आप होता हो तो सांद्रण ०.००१ प्रतिशत रखना चाहिए। स्वतः अंकन नियन्त्रण^१ में सांद्रण ०.०१ प्रतिशत रखना चाहिए। स्तम्भ धारक के महीन छोर से गैस के जो बुलबुले निकलते हैं, वे अनुपात-सेल^२ में रखे पदार्थों को पर्याप्त रूप से हिला कर चला देते हैं। किन्तु जब गैस का प्रवाह काफी कम रखा जाता है, तो अनुमापन-सेल में नाइट्रोजन की दूसरी धारा के चलाने से लाभ होता है। सबसे अन्त में फोटो-वैद्युतीय नियन्त्रण^३ उपकरण को स्विच दबा कर चला दिया जाता है।

वसीय अम्ल स्तम्भ में से निकल कर अनुमापन-सेल में आते हैं और वहाँ उनका अनुमापन स्वयमेव होता है। इसके फलस्वरूप घूमते हुए ड्रम पर वक्र के कई भाग बन जाते हैं। प्रत्येक भाग एक वसीय अम्ल का होता है, और उस की ऊँचाई अम्ल के सांद्रण पर निर्भर होती है। एक ही स्तम्भ को कई बार उपयोग में लाया जा सकता है। वसीय अम्लों के पृथक् करने का एक उदाहरण चित्र १७ में दिखाया गया है।

जेम्स एवं मार्टिन ने ज्ञात किया कि वसीय अम्लों की प्राप्ति परिमाणात्मक रूप से होती है। ऐसी कोई भी बात नहीं मिली जिससे यह कहा जा सके कि अनुमापन-सेल में वसीय अम्लों का अवशोषण अपूर्ण रहा। इन वैज्ञानिकों ने जो सैद्धान्तिक विवेचना की है, उसमें उनके द्वारा दिये गये मान प्रायोगिक मानों से अच्छी तरह मिलते हैं।

(सारणी अगले पृष्ठ पर देखें)

1. Automatic Control
3. Titration cell
2. Photo-electric Control unit

सारणी-२

अम्ल	क्वथनांक	ग्रहण-आयतन (१००°)	ग्रहण-आयतन (१३७°)
फार्मिक	१०७.७	०.०७६	—
ऐसीटिक	११८.१	०. २०	०.२६
प्रोपियानिक	१४१.१	०. ४७	०.५४
आइसो-ब्यूटिरिक	१५४.४	०. ७७	०.८१
नार्मल-ब्यूटिरिक	१६३.५	१. ००	१.००
ट्राई मेथिल ऐसीटिक	१६३.८	१. १५	—
आइसो-वैलीरिक	१७६.७	१. ५१	१.४८
मेथिलएथिल ऐसीटिक	१७७	१. ७०	—
नार्मल वैलीरिक	१८७	२. १७	१.९१
आइसो-क्रैप्रोइक	१९९.१	—	२.९४
नार्मल-क्रैप्रोइक	२०५	—	३.५८
हेप्टोइक	२२३.५	—	६.५५
कैप्रिलिक	२३७.५	—	१२.०
पेलारगोनिक	२५४	—	२२.०
कैप्रिक	२६८.७	—	४०.५
अनडेकानोइक	२२५ (१००मिमि०*)	—	७२.८
लारिक	२२५ (४०मिमि०)	—	१३८.५

*. मिमी० = मिलीमीटर।

अमोनिया एवं मेथिल-अमीनों का पृथक्करण

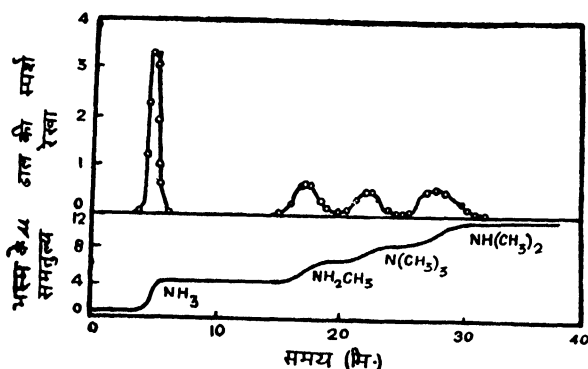
जिस गैस-द्रव क्रोमैटोग्राम का अभी वर्णन किया गया है उसी के सरल परि-वर्द्धन से जेम्स, मार्टिन एवं हावर्ड स्मिथ (८३) ने अमोनिया और तीन मेथिल अमीनों के मिश्रण को पृथक् किया। जेम्स एवं मार्टिन द्वारा स्तम्भ बनाने की विधि में उपर्युक्त वैज्ञानिकों ने थोड़ा परिवर्तन किया। यह पता चला कि कीसेलहुर असक्रिय नहीं था, क्योंकि उस पर अमीनों के अवशोषण^१ से दूर तक फैली हुई बेडिंगी

1. Absorption

पट्टियाँ बनती थीं। इसको निम्नलिखित प्रकार से काफ़ी हद तक दूर कर लिया गया।

कीसेलगहुर के कणों को एक ही प्रकार का बना करके, उसे प्रज्वलित किया गया। तत्पश्चात् उसे वसीय अम्लों में प्रयुक्त होने वाले कीसेलगहुर की भाँति धोया गया। इसके बाद उसे मेथेनाल में सोडियम हाइड्राक्साइड (५ प्रतिशत) के विलयन में डाला गया। ऊपर उठे द्रव को निथार कर कीसेलगहुर को 100° पर सुखा दिया गया और उसे सोडियम हाइड्राक्साइड वाले शोषित्र में रख लिया गया।

द्रव फ़ेज़ के लिए ७ ग्राम कीसेलगहुर को ३ ग्राम द्रव से मिलाया गया। जब द्रव फ़ेज़ १५ प्रतिशत द्रव-पैराफीन था, तो पृथक्करण अच्छे हुए (देखिए, चित्र १७)।



चित्र १७—अमोनिया एवं एक तृतीय-, तथा द्वि-मेथिल अमीनों का पृथक्करण (देखिए—पठनीय सामग्री - उल्लेख सं० ८३)

द्रव फ़ेज़ की रचना में अन्तर कर देने से ग्रहण-आयतन एवं मिश्रण के अवयवों के निकलने के क्रम में अन्तर पड़ जाता है। जब चार अवयवों में से कोई फ़ेज़ ज्ञात हो, तो इन वैज्ञानिकों द्वारा वर्णित दूसरे फ़ेज़ों में से किसी अन्य फ़ेज़ से प्रयोग अधिक लाभदायक होता है।

1. Desiccator

अमीनों के मिश्रण को उनके भस्म को ऐलकोहल में घोलकर (२० प्रतिशत विलयन में ३ माइक्रोलिटर) स्तम्भ पर लगाते हैं या कोई और सुगम विधि से अमीन-लवणों का विलयन बना लेते हैं। यदि भस्म के जलीय विलयनों का उपयोग किया जाये, तो पृथक्करण अच्छा नहीं होता।

अच्छे पृथक्करण के लिए चार फुट लम्बे एवं ४ मिलीमीटर व्यास वाले स्तम्भ में पदार्थों की अधिक से अधिक आने वाली मात्रा यह है—अमोनिया—१६० माइक्रोग्राम, मोनो अथवा डाइ-मेथिल अमीन—१८० माइक्रोग्राम, ट्राइमेथिल अमीन—२२० माइक्रोग्राम। जिस अनुमापन-युक्ति का उपयोग किया गया, उससे ०.३ माइक्रो-तुल्य^१ पदार्थ पहचाने जा सकते हैं; ये अमोनिया, मोनो-, डाइ- एवं ट्राइमेथिल अमीनों के क्रमशः २, ४, ७ एवं ८ माइक्रोग्रामों के बराबर होते हैं।

अनुमापन-विधि^२

जेम्स एवं मार्टिन द्वारा उपयुक्त स्वतःचाली अनुमापन विधि में ०.०४ नार्मल सल्फ्यूरिक अम्ल का प्रयोग होता है और ०.००७ प्रतिशत जलीय मेथिल रेड का सूचक की भाँति उपयोग होता है। ऐसी दो और विधियों से अनुमापन किया गया जिसमें अनुमापन विधि स्वतःचाली नहीं थी। इनमें अम्ल की इतनी मात्रा डाली जाती है कि अनुमापन-सेल में रखा क्षार उदासीन हो जाये। इस विधि में अम्ल डालने के समय का उसकी मात्रा के साथ ग्राफ बना लिया जाता है।

इनमें से सरलतर विधि मामूली कामों के लिए अच्छी है। एक शुडाकार^३ ग्लास्क लेते हैं और उसमें अन्दर फूँकने वाली और बाहर निकालने वाली नली इस प्रकार फिट कर देते हैं, जैसी जल की धावन-बोतल में^४ लगी होती है। अन्दर फूँकने वाली नली में रबर की नली लगा दी जाती है और जब इसको एक सिरे पर ठकड़कर दबाते हैं (फूँकते नहीं), जैसा धावन-बोतल में होता है तो बाहर निकालने वाली नली से द्रव की बूँदें अनुमापन-सेल में गिरती हैं। एक बूँद का आयतन पहले से ही ज्ञात कर लिया जाता है और यह मान लेते हैं कि यह नियत होता है। इस विधि से दो कार्यकर्ता बड़ी आसानी से काम कर लेते हैं—एक अनुमापन करता है और दूसरा बूँद गिनता हुआ समय नोट करता रहता है।

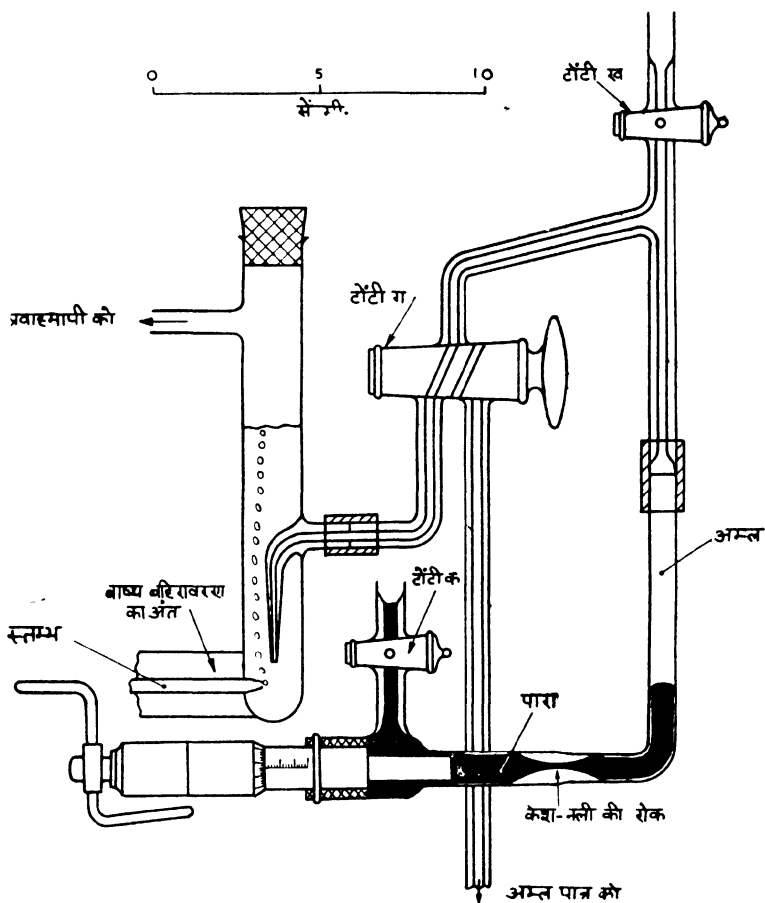
1. Micro-equivalents

2. Titration procedurs

3. Conical

4. Wash-bottle

दूसरी विधि में एक विशिष्ट प्रकार से ब्युरेट बनाते हैं (देखिये चित्र १८)। ब्युरेट में एक गहराई सूक्ष्म-मापी होता है, जैसे “ऐगला” सिरिन्ज (“Aglar”



Syringe—Burroughs Wellcome))। इसे रबर की नली से पारे के पात्र के पास कस कर पकड़ते हैं। बायें हाथ से इसको साध लेते हैं और दाहिना हाथ लिखने के लिए रखते हैं। सूक्ष्म-मापी के ऊपरी हिस्से को जब घुमाते हैं तो उससे पारे का विस्थापन होता है और इससे अम्ल अनुमापन-सेल में प्रवेश करता है। ब्युरेट को चलाने के लिए टोंटी (क) और (ख) आवश्यक नहीं हैं, पर इनसे ब्युरेट को पहले भरने में आसानी होती है।

इस विधि से वाष्पशील ऐलीकैटिक अमीनों और पिरिडीन के सजातीय यौगिकों को जेम्स (११२) ने पृथक् किया है।

अमीनो-अम्लों की विभाजन-क्रोमैटोग्राफी

मूर एवं स्टाइन (५,८४) ने कुछ अद्भुत प्रयोगों का वर्णन किया है। इसमें प्रोटीन के जल-विश्लेषण से प्राप्त अमीनो-अम्लों को पृथक् करके उनका परिमाणन किया गया है। इन वैज्ञानिकों ने 30×0.9 सेंमी० व्यास वाले स्तम्भ को लेकर उसमें आलू का स्टार्च भरा। सरल विलायक, जैसे, नार्मल ब्यूटेनाल, नार्मल प्रोपेनाल और ०.१ नार्मल हाइड्रोक्लोरिक अम्ल का (१ : २ : १ के अनुपात में) उपयोग किया गया। बहने की गति बहुत धीमी थी (१.२५ मिलीलीटर प्रति घण्टा)। अतः एक प्रभाजन^१ कई दिनों तक चलता रहा और इस बीच में ०.५ मिलीलीटर नमूने अपने आप स्वतःचाली अंश एकत्रक में जमा होते रहे और उनकी बूँदें अपने आप गिनी जाती रहीं। अमीनो-अम्लों का परिमाणन उनके निनहाइड्रिन से मिलकर बने रंग के वर्णक्रम-फोटो-मापी^२ विधि से हुआ। केवल ५ मिलीग्राम अमीनो-अम्लों, जिनमें १८ या उससे अधिक अमीनो-अम्ल होते हैं, का भी भली-भाँति पृथक्करण हो जाता है। कृत्रिम^३ मिश्रणों का परिमाणन ३ प्रतिशत तक हो जाता है। अभी हाल में ही इन वैज्ञानिकों ने इस विधि में परिवर्तन किया और स्टार्च के स्थान पर आयन-विनिमय रेजिन का उपयोग किया। ऐसा करने से प्रयोगों की पुनःशीलता^४ बढ़ जाती है और पृथक्करण भी अच्छे होते हैं; सूक्ष्म मात्रा में उपस्थित कार्बोहाइड्रेट की मिलावटों से भी छुटकारा मिल जाता है; और प्रोटीन

1. Fractionation

2. Spectrophotometric

3. Synthetic

4. Reproducibility

को लवण-रहित करने^१ का भी झंझट नहीं रहता। उदाहरणतया, रक्त प्लाज्मा और पेशाब का विश्लेषण करने के पहले उनको लवण-रहित करना पड़ता था। इन स्तम्भों पर अमीनो-अम्लों के पृथक् होने का क्रम विभिन्न जरूर था।

प्रवाह-विरोधी वितरण^२

क्रेग और उसके साथियों (८५, ८६) ने ऐसे उपकरण के कई रूपों का वर्णन किया है जिससे दो विलायकों में क्रम-पूर्वक वितरण हो सके। इस उपकरण का भी सिद्धान्त वही है जिसका अध्याय १ (माचिस की ढेरी वाले प्रयोग) में वर्णन किया गया है।

इस उपकरण का निर्माण इस प्रकार होता है—अकलुष इस्पात के बराबर व्यास वाले दो सिलिंडर लिये जाते हैं। उनकी मुख्य धुरी की समान्तर परिधि पर बेलनाकार छिद्रों को एक लकीर में काट लिया जाता है। तब सिलिंडरों को ऐसी जगह पर चपटा करके एक दूसरे पर इस प्रकार रखा जाता है जिससे वे द्रव-रोधक^३ होकर फिट हो जायें। उनके दूसरे भागों को भी घिसकर इतना चपटा कर लिया जाता है कि वे शीशे की प्लेटों पर जम सकें। बेलनाकार छिद्र इतने दूर-दूर रखे जाते हैं कि सिलिंडरों को इच्छानुसार चलाने पर छिद्रों की एक श्रेणी बन्द हो जाये और दूसरी खुली रहे। नीचे वाले सिलिंडर के कोषों में एक विलायक भर दिया गया और दूसरे विलायक की थोड़ी मात्रा को दूसरे सिलिंडर के कोषों में भर दिया गया। तत्पश्चात् नीचे वाला सिलिंडर इतना हिलाया गया जिससे विभाजन का सन्तुलन हो जाये। इसके बाद उसे थोड़ी देर तक यों ही रहने दिया गया जिससे विलायक पृथक् हो जायें। अब ऊपरी सिलिंडर को थोड़ा घुमा कर खिसकाने से यह सम्भव था कि उसके सिलिंडर का कोष नीचे वाले सिलिंडर के कोष (जिसमें सन्तुलन अवस्था आ चुकी थी) के सामने आ जायें। इसी प्रकार बार-बार घुमाने से ऊपरी सिलिंडर को नीचे वाले सारे कोषों के सामने लाया जा सकता है। पहले उपकरण में २५ कोष (सेल) थे और बाद में बनाये गये उपकरण में ५४।

1. Desalting
3. Liquid-tight

2. Counter-current distribution

इन वैज्ञानिकों के बाद वाले शोध-निबन्ध में दूसरी डिज़ाइन का उपकरण था। इसमें २२० कोष थे। प्रत्येक कोष शीशे का बना था जिसके हिलाने की विधि और एक कोष में से विलायक को दूसरे में लाने की प्रक्रिया सिलिंडर को थोड़ा टेढ़ा करने पर ही हो जाती थी।

इस प्रवाह-विरोधी वितरण-विधि में ध्यान देने योग्य बात यह है कि गणित-सिद्धान्त इसमें अच्छी तरह से लगाये जा सकते हैं, और क्रोमैटोग्राफी स्तम्भों की भाँति इसमें ठोस सहायक-द्रव्य के कारण गड़बड़ी होने की संभावना नहीं रहती। व्यावहारिक दृष्टिकोण से उपकरण सरल नहीं है क्योंकि इसमें पृथक् करने की क्षमता अधिक नहीं है। यह याद रखना चाहिए कि क्रोमैटोग्राफ़ीय स्तम्भों में हजारों सैद्धान्तिक प्लेटें (यहाँ पर के एक कोष के समान) होती हैं। इस कारण इसका यहाँ विस्तृत विवेचन नहीं किया गया है।

अध्याय ६

स्तम्भ-क्रोमैटोग्राफी-आयन-विनिमय

आयन-विनिमय रेज़िनों पर क्रोमैटोग्राफी का कार्य अभी हाल में ही आरम्भ हुआ है। इसका एक कारण यह है कि प्रयोगों के लिए उपयुक्त रेज़िनों के व्यापारिक उत्पादन करने के पहले इसकी व्याख्या आवश्यक थी कि क्रोमैटोग्राफी के काम में आने वाली रेज़िनों में वांछनीय गुण कौन-से हों। अब अनेक रेज़िन प्राप्य हैं—तीव्र-अम्लीय, हलके अम्लीय, तीव्र भास्मिक एवं हलके भास्मिक; इनमें से कुछ रेज़िनों में तो केवल एक अधिशेषक समूह होता है। इन रेज़िनों के उपयोग करने की विधि या तो विस्थापन की है या निष्कासन की।

१९४५ में अमेरिका के एटामिक एनर्जी कमीशन की एम्स प्रयोगशाला में विरल-मृदा^१ को बड़ी मात्रा में पृथक् करने के प्रयोग (८७) किये गये। इसके फलस्वरूप १९४९ में डा० एफ० एच० स्पेडिंग ने रीडिंग में फैरडे सोसायटी के वार्षिक वाद-विवादों के समय शुद्ध लैन्थेनम् की एक छड़ प्रदर्शित की। यहाँ पर पहले पार्टिज़ और उनके साथियों (८८) द्वारा १९४७ में निकाली गयी विस्थापन विधि का वर्णन किया जायेगा, क्योंकि ऐसा करना सम्भवतः अधिक सरल है।

यदि किसी तीव्र भास्मिक एवं एक कार्य करने वाली^२ रेज़िन, जैसे डावेक्स २, को^३ ऐसे विलयन में डाला जाये जिसमें दो अम्लीय विलयशील बराबर सांद्रण में हों तो अम्लों के ऋणायन^४ रेज़िन पर अवशोषित हो जायेंगे; विलयन में, तीव्र अम्ल हलके अम्ल के आयनीकरण को दबा देगा। इस कारण रेज़िन पर हलके अम्ल की अपेक्षा, तीव्र अम्ल अधिक अवशोषित होगा। जब यह प्रक्रिया एक रेज़िन भरे स्तम्भ में होती है तो फल यह होता है कि तीव्र अम्ल की अपेक्षा हलका अम्ल स्तम्भ

1. Rare earth

2. Monofunctional

2. Dowex 2

4. Anions

में तेजी से नीचे दौड़ता है। इसके फलस्वरूप अग्रभागीय-विश्लेषण की-सी दशा उत्पन्न हो जाती है। इसी प्रकार, अम्लों के मिश्रण को ऐसे स्तम्भ में लगाया जा सकता है जिसका विस्थापन ऐसे अम्ल से किया जा सके जो मिश्रण के दोनों अम्लों से अधिक तीव्र हो। ठीक इसी विधि से भास्मिक पदार्थों के मिश्रण को तीव्र अम्लीय रेज़िन के स्तम्भ पर पृथक् किया जा सकता है। भास्मिक रेज़िन पर अम्लों के विस्थापन का क्रम, अथवा अम्लीय रेज़िन पर भस्मों के विस्थापन का क्रम उनके विघटन-नियतांकों^१ (अथवा PK मानों) पर निर्भर होना चाहिए; संयोजकता अथवा कुछ अन्य विचारों को छोड़ कर यह नियम ठीक भी पाया गया है।

ऊँची संयोजकता वाले आयन को नीची संयोजकता वाले आयन को विस्थापित करना चाहिए। धनायनों के लिए बोयड्, शुबर्ट एवं ऐडम्सन (८९) ने डिबाई-ह्यूकेल पैरामीटर^२ को जलयुक्त आयन के व्यासार्ध का माप माना और इस प्रकार निष्कर्ष निकाला कि निष्कासन का क्रम यह होना चाहिए—

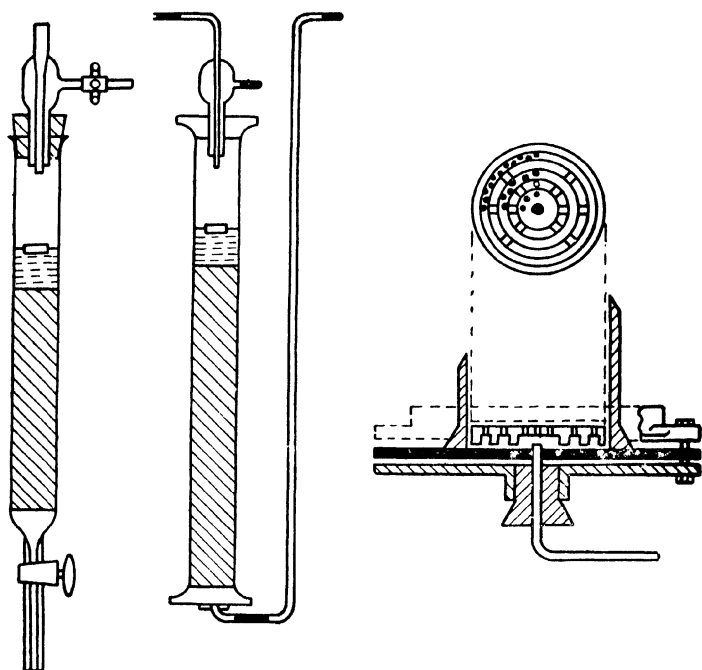
Na-NH₄-K-Rb-Cs (एक संयोजक आयन); Ba, Sr, Ca-Mg Zn, Cu-Ni-Co-Fe (द्वि-संयोजक आयन)। कोहन एवं कोहन (९०) ने यह निश्चित रूप से बताया कि डावेक्स ५० रेज़िन पर १.५ नार्मल हाइड्रो क्लोरिक अम्ल से एक-संयोजक आयन उपर्युक्त क्रम अर्थात् Na-K-Rb-Cs के अनुसार ही पृथक् हुए।

पृथक्करण की सीमा विशिष्ट प्रायोगिक व्यवस्था की बारीकियों पर निर्भर होती है। उन पदार्थों का जिनके PK मानों में ०.०५ या इससे भी कम का अन्तर है आसानी से, बिना किसी प्रायोगिक विस्तार के पृथक्करण किया जा सकता है।

मार्टिन एवं सिन्ज द्वारा विभाजन-स्तम्भों की व्याख्या के लिए प्रतिपादित प्लेट-सिद्धान्त को मायर एवं टामकिन्स (९१) ने आयन स्तम्भों की व्याख्या के लिए भी लगाया।

परिमाणात्मक दृष्टि से आयनीकृत पदार्थों की स्तम्भ से प्राप्ति पूर्ण रूप से होती है; कुछ दशाओं में अपवाद भी होते हैं, जैसे कुछ स्तम्भों में आयन गतिशील बन जायें या सीधा आयन-विनिमय न होकर कुछ कारणों से आयन चिपकने भी लगे। शुष्क प्रोटीन के १० एवं २८० ग्रामों से दो प्रयोग किये गये; इन दोनों में शुद्ध केला-

सीय अमीनो-अम्ल की उतनी मात्रा प्राप्त हुई जितनी उपयुक्त प्रोटीन की ६० प्रतिशत मात्रा के जल-विश्लेषण से होनी चाहिए। जिन ज्ञात स्थलों पर अमीनो-अम्ल बेकार गये, वे ये थे—केलासन में हानि, उन पट्टियों को फेंक देना जहाँ पर वे एक दूसरे से मिलती थीं, और सम्भवतः जल-विश्लेषण की विधि में कुछ विच्छेदन। मिली-जुली पट्टियों के टुकड़ों को फेंकने के बजाय उनका दुबारा पृथक्करण किया जा सकता है, इस प्रकार अमीनो-अम्लों की मिली हुई पट्टियों में हानि को केवल कुछ मिलीग्राम तक ही सीमित रखा जा सकता है।



चित्र १९—आयन विनिमय क्रोमेटोग्राफी के लिए स्तम्भ की व्यवस्था (देखिए—
पठनीय सामग्री - उल्लेख सं० ९२, पार्टिज एवं ब्रिम्ले से परिर्वर्धित)

स्तम्भों की तैयारी

मध्यम नाप के स्तम्भ-धारक का, जिसका पार्टिज की प्रयोगशाला में उपयोग

हुआ, अन्दरूनी व्यास एक इंच का था और स्तम्भ की काम में आने वाली लम्बाई ९ अथवा १० इंच की थी। सल्फोनेटेड पाली-स्टीरीन के स्तम्भ की वास्तविक गहराई लगभग ६ इंच होती है। चित्र १९ में दो व्यवस्थाएँ दिखायी गयी हैं।

बायीं ओर जो व्यवस्था है, वह एक इंच अथवा उससे भी कम व्यास के लिए उपयुक्त है और यह उपकरण वे लोग भी आसानी से बना सकते हैं जिनको शीशा फूँकने की थोड़ी-सी भी कला आती है। दायीं ओर जो स्तम्भ-धारक दिखाया गया है वह विशेष प्रकार के औद्योगिक शीशे की नली से (James A. Jobling and Co., Ltd., Wear Glass Works, Sundelan, County Durham., से प्राप्य) बनाया गया है। इसी कम्पनी से फ्लैज^१ भी प्राप्त किये जा सकते हैं। इसके नीचे-ऊपर लगने वाली प्लेटों को प्रयोगशाला में बनाया जा सकता है। इस प्रकार के स्तम्भ-धारक एक इंच या उससे बड़े व्यास के लिए उपयुक्त हैं। रोधनियाँ^२ एवं द्रव प्रवेश करानेवाली नलियाँ मोटी दीवार की केश-नली से बनी होती हैं, इनका छिद्र एक-दो मिलीमीटर तक का होता है, जिससे मिल सकने वाले द्रवों का आयतन कम रहे। स्तम्भ में द्रव प्रवेश कराने वाली नलियाँ शीशे की छोटी नलियाँ होती हैं जिनसे द्रव स्तम्भ के बीच में गिरता है; बाहरी ओर खबर की नली लगी होती है जो हवा में रहती है और इसके निचले सिरे पर नली को बन्द करनेवाला पेंच-क्लिप^३ होता है। इन सबको प्रयोगशाला में बनाया जा सकता है; इसके स्थान पर एक इंच या उससे अधिक वाली दो नलियों का प्रयोग किया जा सकता है। बाहर निकासी की नली की व्यवस्था करने का मतलब यह है कि रेज़िन के ऊपर रहनेवाली द्रव की मात्रा का नियंत्रण किया जा सके। द्रव में ऐलकाथीन की डिस्क तैरती रहती है। इसके कारण रेज़िन पर गिरने वाले द्रव से रेज़िन की ऊपरी सतह की रक्षा होती रहती है, इससे रेज़िन के ऊपर रहनेवाला द्रव थोड़ा हिलता भी रहता है। रेज़िन के ऊपर रहने वाले द्रव की मात्रा को कम से कम होना चाहिए; पर उसे इतना अवश्य होना चाहिए जिसमें डिस्क तैर सके, साधारण रूप से कुछ मिलीमीटर द्रव पर्याप्त होता है।

स्तम्भ के ऊपर इस प्रकार की व्यवस्था तब आवश्यक होती है जब स्तम्भों को एक क्रम से चलाना हो। जब कई स्तम्भों के बीच के आयतन द्रव से पूरी तरह

भर जाते हैं तो द्रव-धारा बराबर बहती है। जब स्तम्भ के ऊपर से द्रव अनियमित रूप से टपकता अथवा धँसता है तो कई स्तम्भों में द्रव की यह धारा टूटी हुई सी चलती है।

चित्र के बायीं ओर के स्तम्भ-धारक में काँच-ऊन की एक गद्दी रहती है और इसकी ऊपरी सतह को पिछले अध्याय में वर्णित विधि से काँच की छड़ को चपटा करके सावधानी से बराबर कर दिया जाता है। दायीं ओर वाले स्तम्भ-धारक में नीचे की ओर ज़रा चौड़ी डिस्क होती है; जैसा चित्र में दिखाया गया है, यह “पर्सपेक्स” को काटकर बनायी जाती है। इसे फ़ाइबरग्लास से बुन कर बनायी गद्दी से ढँक दिया जाता है, जिससे रेज़िन के छोटे कण चौड़ी डिस्क के छेदों को रूंधा न दें। जिस शीशे की नली से द्रव स्तम्भ के बाहर आता है वह रबर-नली से कसकर फ़िट होती है; इसका सिरा बहुत दूर तक नहीं जाना चाहिए, अन्यथा फ़ैली हुई डिस्क की निचली सतह में यह पेंदी तक जा लगती है जिससे द्रव के बहाव में रुकावट पड़ती है।

धातु की चौड़ी नली की छोटी लम्बाई, आखिरी-प्लेट से पीतल द्वारा जुड़ी होती है जिसमें मामूली काग लगा होता है। काग में एक छेद होता है जिसमें शीशे की नली फ़िट रहती है। उसका काम यह होता है कि यदि दुर्घटनावश अचानक दबाव पड़े तो यह रबर-नली के साथ में शीशे की नली के जोड़ को धक्के से बचाती है।

इस स्तम्भ का ऊपरी भाग भी वैसा ही बना होता है जैसा निचला भाग, पर उसमें चौड़ी डिस्क और फ़ाइबर ग्लास नहीं होते।

ध्यान दीजिए कि स्तम्भ-धारक के ऊपरी सिरे पर काफ़ी रिक्त स्थान है। चित्र में दिखाये स्थान की अपेक्षा इसको कम किया जा सकता है, किन्तु यह याद रखना चाहिए कि स्तम्भ में प्रक्रिया होते समय रेज़िन का आयतन बढ़ जाता है; कभी-कभी तो यह बढ़ाव १० प्रतिशत तक होता है। अतः अच्छा यही है कि काफ़ी अधिक स्थान छोड़ा जाये, जिससे बाद में कोई परेशानी न हो।

स्तम्भ का भरना सरल है। रेज़िन का घेंप (गारा) बना कर स्तम्भ में डाला जाता है और उसे नीचे बैठने दिया जाता है। अधिकतर रेज़िन, एक विशेष प्रकार के दानों के रूप में मिलती है; जब उसके दाने नहीं होते तो उसे चलनी में चालने की आवश्यकता पड़ती है जिससे उसके सारे कण दो चलनियों के बीच के आकार

के हों; डेढ़ इंच या इससे अधिक व्यास वाले स्तम्भों के लिए ६०-८० मेश^१ प्रतिइंच वाली रेज़िन उपयुक्त है, आधे से डेढ़ इंच व्यास के लिए ८०-१०० मेश प्रति इंच वाली; आधे इंच से कम व्यास वाले स्तम्भों के लिए और चलनी में प्रति इंच और अधिक मेश होना चाहिए। रेज़िन में से धूल और अत्यन्त महीन कणों को पानी निथार कर अलग कर लेना चाहिए। अच्छा हो, यदि रेज़िन भरने के पहले उसे बीकर में डालकर उसका साइकिल चला दिया जाय; साइकिल चला देने के मतलब यह है कि उसकी एक बार अम्लीय और दूसरी बार भास्मिक विलयनों से प्रक्रिया की जाये। उदाहरणतया, पालीस्टीरीन, सोडियम के लवण रूप में दानों के आकार में मिलती है। इस रेज़िन को दो नार्मल हाइड्रोक्लोरिक अम्ल में भिगो दिया जाता है, तत्पश्चात् उसे दो बार पानी से धोया जाता है। इसके बाद दो नार्मल सोडियम हाइड्रॉक्साइड में भिगोया जाता है और अन्त में उसे फिर पानी से धो लिया जाता है।

प्रयोग के पहले भरे हुए स्तम्भ को चालू करने^२ की आवश्यकता होती है। चालू करनेवाले द्रव की मात्रा बहाव के वेग और रेज़िन के चयन पर निर्भर होती है; इन बातों पर शोध-कार्य अच्छी तरह से किया गया है। ज़ियोकार्ब २१५ और सल्फोनेटेड पालीस्टीरीन के स्तम्भों को १ अथवा २ नार्मल हाइड्रोक्लोरिक अम्ल से चालू किया गया; अम्ल की मात्रा इतनी डाली गयी जिससे उसमें इतना अम्ल समा जाये कि स्तम्भ में भरे रेज़िन से संयुक्त करनेवाले सोडियम की मात्रा से वह लगभग दस गुना हो। इस प्रकार, एक इंच व्यास वाले सल्फोनेटेड पालीस्टीरीन के स्तम्भ को, जिसमें लगभग ०.१६ मोल^३ सोडियम आ सकता है, चालू करने के लिए डेढ़ लिटर नार्मल हाइड्रोक्लोरिक अम्ल का प्रयोग करना चाहिए। यदि द्रव की बचत करनी हो तो कभी-कभी चालू करने वाले द्रव की मात्रा को कम किया जा सकता है। अधिक तीव्र भास्मिक रेज़िन, जैसे डावेक्स २, के स्तम्भ को चालू करने के लिए इससे भी अधिक द्रव की आवश्यकता होती है। यह द्रव इस प्रकार बनाया जाता है—२ नार्मल सोडियम हाइड्रॉक्साइड के विलयन में १० ग्राम प्रति लिटर के हिसाब से बेरियम हाइड्रॉक्साइड मिला दिया जाता है; द्रव को इस्तेमाल करने के पहले छान लिया जाता है। यह देखा गया है कि तीव्र भास्मिक रेज़िन

आंशिक रूप से ही चालू हो पाती है; क्षार का बहाव रात में बन्द हो जाता है और दूसरे दिन प्रक्रिया पूर्ण हो जाती है। इस विधि में रेज़िन संतृप्त करनेवाले हाइड्रो-क्लोरिक अम्ल की मात्रा से चालू करने वाले आवश्यक क्षार को बीस गुना होना चाहिए। क्लोराइड से मुक्ति के लिए अम्लीय सिल्वर नाइट्रेट की परख करनी चाहिए। यदि “ऐनालर”^१ सोडियम हारड्राक्साइड का प्रयोग किया जाये तो बेरियम हाइड्राक्साइड को मिलाने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

पृथक्करण के पहले सब रेज़िनों के स्तम्भ में से चालू करने वाले द्रव को अच्छी तरह धो डालना चाहिए। इसके लिए आसुत जल की अपेक्षाकृत थोड़ी मात्रा पर्याप्त होती है; विधि को आरम्भ करने के पहले लिटमस कागज़ से परख कर लेनी चाहिए। भास्मिक रेज़िनों से काम करते समय यह आवश्यक है कि कार्बनडाइआक्साइड को दूर रखा जाये, अतः उपयोग के पहले आसुत जल को भी उबाल कर ठण्डा कर लेना चाहिए।

अनेक स्तम्भ

यद्यपि पृथक्करण एक ही स्तम्भ पर हो सकता है, तथापि एक स्तम्भ को पृथक्कारी क्षमता अधिक नहीं होती। अतः अब दो या तीन स्तम्भों को एक श्रेणी में रख कर पृथक्करण किया जाने लगा है। पार्ट्रिज एवं ब्रिम्ले (१२) ने ८ मिलीमीटर से लेकर ३ इंच व्यास वाले स्तम्भों तक की श्रेणी की व्यवस्था करने की योजना बतायी है। इसमें पहले सबसे बड़ा स्तम्भ रखते हैं, उसके बाद उसकी तिहाई क्षमता वाला स्तम्भ लगाते हैं, इसके बाद तिहाई क्षमता वाले स्तम्भों को ही लगाया जाता है। इसका लाभ यह है कि साधारण रूप से मिश्रण की किसी भी मात्रा को लिया जा सकता है और एक ही श्रेणी (क्रम) में लगे स्तम्भों पर उसके अवयवों को पृथक् किया जा सकता है। अनेक स्तम्भों के उपयोग में एक लाभ यह भी है कि उसकी पृथक्कारी क्षमता अधिक होती है। विलयशील की पट्टी का अग्र-भाग स्तम्भ में धँसते-धँसते हलका पड़ता जाता है और उसकी सतह भी पहले की तरह नहीं रहती। स्तम्भ का थोड़ा लम्बा होना भी आवश्यक है जिससे विस्थापन पूर्ण रूप से हो सके। एक बार जब यह हो जाता है तो स्तम्भ का निष्कासित दूसरे

छोटे स्तम्भ में डाला जा सकता है जिसमें अग्रभाग फिर से स्पष्ट बन जाता है। तीसरे स्तम्भ में हालत और अधिक सुधर जाती है और पृथक्करण पहले स्तम्भ की अपेक्षा काफ़ी स्पष्ट रूप से होता है।

इस प्रकार छोटा स्तम्भ “अग्रभाग-सीधा करने” का कार्य करता है। सरल पृथक्करण के लिए केवल दो स्तम्भों का भी उपयोग किया जा सकता है, यदि पहले स्तम्भ में विलयशील का बिगड़ा भाग दूसरे स्तम्भ की अग्रभाग सीधा करने की क्षमता से ठीक हो सके। ऐसी दशा में तीसरे स्तम्भ की आवश्यकता नहीं पड़ती। दोनों स्तम्भों की क्षमता का अनुपात १० : १ हो सकता है। यदि पृथक् किये जाने वाले मिश्रण की मात्रा विभिन्न प्रयोगों में विभिन्न होती है तो स्तम्भों का दूसरा जोड़ा बना लेना अच्छा होता है; इसका लाभ स्पष्ट ही है। अनेक स्तम्भों की प्रक्रिया के वर्णन के पहले प्रयोग की योजना के बारे में कई बातों पर विचार करना आवश्यक है।

नमूने की मात्रा

अपने विचारों को सुलझाने के लिए हम यह मान लेंगे कि स्तम्भ सल्फोनेटेड पालीस्टीरीन के हैं और पृथक् होने वाला मिश्रण अमीनो-अम्लों एवं भस्मों का है। तीनों स्तम्भों में सबसे बड़े स्तम्भ पर लगाये जाने वाले मिश्रण की मात्रा उतनी होनी चाहिए कि स्तम्भ का तिहाई अथवा आधा भाग संतृप्त हो सके। साधारण रूप से अवशोषित होने वाले पदार्थ की पट्टी को देखा जा सकता है, तथापि सम्पूर्ण धनायनों की मात्रा का आरम्भ में अन्दाज़ कर लेना अच्छा होता है, क्योंकि इससे स्तम्भों का सही आकार ज्ञात किया जा सकता है। मिश्रण के विलयन का PH अधिक अम्लीय नहीं होना चाहिए। बहुत अधिक अम्लीय PH के मानों पर रेज़िन की अवशोषण-क्षमता शून्य होती है, अम्ल के कम होने पर यह बढ़ती जाती है। लगभग ३ PH पर यह लगभग ५ मिलीमोल प्रति ग्राम शुष्क रेज़िन होती है, इससे कम PH पर भी अवशोषण-क्षमता यही रहती है। अतः यदि विलयन का PH तीन से कम है, या विलयन में ऐसे लवण हैं जिनके धनायन अवशोषित होने पर ३ से कम PH बनाते हैं, तो स्तम्भ की वास्तविक क्षमता कम हो जाती है और स्तम्भ में अवशोषित विलयशील युक्त रेज़िन का अनुपात बढ़ जाता है। लगभग ३ PH पर यह प्रभाव अधिक गम्भीर नहीं होता, पर २ PH पर स्तम्भ में अवशोषित रेज़िन का बढ़ा हुआ अनुपात ऐसी रेज़िन कम छोड़ता जिससे नीचे बहने वाले-

द्रव का विस्थापन पूर्ण रूप से हो सके; दूसरे शब्दों में स्तम्भ की पृथक्कारी क्षमता जाती रहती है। इस प्रभाव को कम करने के लिए स्तम्भ में लगाये गये द्रव का सांद्रण कम किया जा सकता है, पर बहुत तनु विलयनों से भी परेशानी होती है, अतः लवण रहित करने वाली^१ विधि का उपयोग करना पड़ता है।

यदि पृथक् किये जाने वाले मिश्रण में लवणों की ठीक मात्रा ज्ञात न हो तो थोड़े विलयन को लेकर उसी रेजिन के एक छोटे स्तम्भ में चलाना चाहिए और बहिरागामी का अनुमापन कर लेना चाहिए।

विस्थापी विलयन का सान्द्रण

स्तम्भों से प्रयोग करते समय यह बात ध्यान में रखना आवश्यक है कि स्तम्भ स्वयमेव छनने की भाँति काम करते हैं। विलयन में से जो भी पादार्थ बाहर निकलता है वह स्तम्भ में भरे द्रव पर जमा होने लगता है। यदि यह द्रव्य थोड़ा-सा भी जम जाये तो स्तम्भ की कार्यवाही खराब हो जाती है अथवा द्रव का बहना बिलकुल रुक जाता है। इस कारण पृथक् किये जाने वाले पदार्थ में आलम्बित द्रव्य बिलकुल नहीं होना चाहिए; उसमें ऐसे द्रव्य भी नहीं होने चाहिए जो PH के परिवर्तनों से एवं विस्थापन-विधि में सांद्रण के कारण अवक्षेपित हो सकें। सांद्रण के कारण अमीनो-अम्लों से ही परेशानी हो सकती है। उदाहरणतया, साधारण ताप पर ऐस्पाटिक अम्ल केवल ०.०६ मोलर विलेय है; टायरोसीन एवं सिस्टीन की विलेयता तो और भी कम है।

सिस्टीन को पृथक् करने की सबसे अच्छी विधि यह है कि विलयन को सुगमतम अधिकाधिक सांद्रण पर रखा रहने दिया जाये और उसको बाद में छान लिया जाये। टायरोसीन को सबसे अच्छी तरह फिनाइल ऐलानीन द्वारा पृथक् किया जा सकता है; अथवा पार्टिज (९३) द्वारा वर्णित विधि से पूर्व प्रतिक्रिया किये हुए काठ कोयले पर उसे अलग किया जा सकता है। सक्रिय काठकोयले (B.D.H.) की जब ५ प्रतिशत जलीय ऐसीटिक अम्ल से प्रतिक्रिया की जाती है तो वह अमीनो-अम्लों के विलयन में से दो अमीनो-अम्लों (गंधित)^२ को सोख लेता है। यह पृथक्करण काफ़ी तीव्र हो सकता है, यदि उनकी मात्राओं को ठीक तरह से व्यवस्थित कर लिया

जाये। काठ-कोयले से प्रक्रिया करने का एक लाभ यह भी है कि इस विधि द्वारा अमार्जित^१ जल-विश्लेषित के रंग साफ़ हो जाते हैं, किन्तु यह नहीं भूलना चाहिए कि इस विधि से अन्य गंधित पदार्थ अथवा शर्कराएँ भी निकल सकती हैं, यदि वे जल-विश्लेषित^३ में हैं। सिस्टीन अथवा टायरोसीन की सूक्ष्म मात्राएँ स्तम्भ की कार्यवाही को खराब नहीं करतीं यदि वे काफी मात्रा में हैं।

बाक़ी बचने वाले अमीनो-अम्लों में, ऐस्पार्टिक अम्ल का ऐसे सांद्रण पर विस्थापन हो सकता है जो उसकी विलेयता से कुछ अधिक हो, क्योंकि यह स्तम्भ में से अति संतृप्त^३ दशा में निकलता है। जब ऐसा जानकर किया जाता है तो इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि जब तक ऐस्पार्टिक अम्ल स्तम्भ में हैं तो कहीं कुछ समय के लिए प्रवाह रुक न जाये; अन्यथा अवक्षेपण हो जाता है। सबसे कम विलेय अमीनो-अम्लों में दूसरा नम्बर ग्लूटामिक अम्ल का है। इसके ०.१२ मोलर विलयन को स्तम्भ में से चलाना चाहिए। यदि प्रयोग के ताप को बढ़ा दिया जाये, तो अधिक सांद्रण वाले विलयनों को लिया जा सकता है। किन्तु इससे लाभ सीमित होता है, क्योंकि ल्युसीन अधिक विलेय नहीं है और ताप बढ़ाने पर उसकी विलेयता अधिक नहीं बढ़ती।

जो रेज़िन तीव्र अम्लीय अथवा तीव्र भास्मिक होती हैं और एक कार्य करने वाली भी होती हैं, उनमें से निकले बहिरागामी में विलयशील का वही सांद्रण होता है जो विस्थापी विलयन का होता है। प्रोटीन के जल-विश्लेषित के लिए उपर्युक्त सांद्रण ०.०७५ नार्मल है; यही सांद्रण क्रमिक कागज़-क्रोमैटोग्राम के लिए भी उपयुक्त है जिससे यह निर्धारित किया जाता है कि पृथक् हुए विलयशीलों का क्रम वही है जो बहिरागामी के अंशों का होता है।

जब पृथक् किये जाने वाले विलयशीलों की मात्रा ज्ञात होती है और विस्थापी द्रव के सांद्रण का निश्चय कर लिया जाता है तो एकत्रित किये जाने वाले बहिरागामी के अंशों का पूर्ण आयतन मालूम हो जाता है। उदाहरणतया, सल्फ़ोनेटेड पालीस्टीरीन के १ इंच व्यास वाले स्तम्भ को लीजिए। इस स्तम्भ की क्षमता लगभग १६० मिलीमोल^४ है। यदि विलयशील केवल आधे स्तम्भ में ही आते हैं और

1. Crude

2. Hydrolysate

3. Supersaturated

4. Milli moles

विस्थापी विलयन का सांद्रण ०.०७५ नार्मल है तो बहिरागामी के कुल अंश, जिनमें विस्थापी विलयशील के अतिरिक्त अन्य सब विलयशील होते हैं, लगभग एक लिटर के होंगे। इसको सरलता पूर्वक २० मिलीलीटर के ५० अंशों में बाँटा जा सकता है। यह संख्या लगभग २० विलयशीलों के लिए पर्याप्त है, क्योंकि लगभग इतने ही अमीनो-अम्ल प्रोटीन के जल-विश्लेषित में पाये जाते हैं। यदि विलयशील कम संख्या में हों तो अंशों की संख्या को भी घटाया जा सकता है। अधिक अंशों को एकत्र करने में कोई विशेष लाभ नहीं होता—यदि एक विलयशील दो या तीन अंशों में निकलता है तो अंश की मात्रा कम निर्धारित की गयी है।

विलयनों का साफ़ करना

तैयार किये हुए आलम्बित द्रव्य रहित मिश्रण को स्तम्भ पर सीधे ही लगाया जा सकता है। जल-विश्लेषितों को काठ कोयले से प्रतिक्रिया करके और छान करके साफ़ करना चाहिए। जीवों से निकले विलयनों को साफ़ करने में कुछ कठिनाई होती है और प्रत्येक विलयन के लिए विभिन्न विधि का प्रयोग होता है। हस्तक्षेप करने वाले पदार्थों की पूर्ण सफ़ाई सदैव आवश्यक नहीं होती। इसके दो उदाहरण दिये जा रहे हैं। पहला उदाहरण चुकंदर (९४) के नाइट्रोजन युक्त पदार्थों से ग्लूटामीन के पृथक्करण से संबंधित है। चुकंदर को दबाकर रस निकाला जाता है। उसके बाद उसको जमा कर उसके टुकड़े कर लिये जाते हैं; इन पर भास्मिक लेड ऐसीटेट की कम से कम मात्रा डाली जाती है। इससे साफ़ नारंगी रंग का विलयन निकलता है। विलयन में थोड़ा सीसा होता है; अतः इसे तीन स्तम्भों की व्यवस्था में चलाने के पहले एक अलग जुड़े स्तम्भ में चला लिया जाता है। विस्थापी द्रव अमोनिया होता है। इसको साधारण रूप से चलाया गया; सीसा स्तम्भ में तेजी से चिपक जाता है और अमोनिया उसके ऊपर बहती जाती है। बाद में इस स्तम्भ को अलग करके उसमें से सीसा निकाल लिया गया।

दूसरा उदाहरण ताज़ी हैडक मांसपेशी^१ (९५) के नाइट्रोजनयुक्त सार के प्रभाजन^२ से संबंधित है। मछली की उभरी मांसपेशियों को निकाल कर उनके टुकड़े कर लिये गये। परम^३ ऐलकोहल से उसका सार निकाला गया, जब तक

एलकोहल की सार में मात्रा ८० प्रतिशत नहीं हो गयी। इस विलयन को अच्छी प्रकार हिला कर रात भर रखा रहने दिया गया। तत्पश्चात् उसे ६०° पर पंद्रह मिनट तक गरम किया गया और उसे गरम-गरम छान लिया गया। इस द्रव को ०° पर रखा रहने दिया गया और बाद में केलासित द्रव को छान लिया गया। इससे जो साफ़ द्रव बचा वह लगभग ९ लिटर था और इसमें ५०-६० प्रतिशत ऐलकोहल था। इसी द्रव का प्रभाजन करना था।

इसमें कार्बनिक भस्में, अमीनो-अम्ल और लाइपिड^१ द्रव्यों की काफ़ी मात्रा थी; तथा कुछ प्रोटीनों, म्युक्वायडों^२ की भी सूक्ष्म मात्राएँ थीं। इसमें अकार्बनिक लवण भी काफ़ी मात्रा में थे और इनके कारण अधिक शुद्धीकरण आवश्यक था। यह शुद्धीकरण इस प्रकार किया गया—पहले द्रव को दो इंच व्यास वाले स्तम्भ में से चलाया गया; स्तम्भ में एक दूसरे से जुड़ी हुई सल्फ़ोनेटेड पालीस्टीरीन की रेज़िन (१५-३० मेश प्रति इंच वाले दानों की) थी। इस रेज़िन को चालू करने के लिए हाइड्रोक्लोरिक अम्ल का प्रयोग किया और इसे आसुत जल से धो लिया गया। सबसे बाद में स्तम्भ को ६० प्रतिशत ऐलकोहल से धोया गया। अब विलयन के ९ लिटर इस स्तम्भ में से चलाये गये। इसमें भस्म और अमीनो-अम्ल तो स्तम्भ में आ गये; अधिकांश लाइपिड द्रव्य तो बाहर निकल गया और बाकी बचे लाइपिड द्रव्य को ६० प्रतिशत ऐलकोहल से धोकर बाहर निकाल दिया गया। ऐलकोहल से स्तम्भ को तब तक धोया गया जब तक स्तम्भ में से चर्बी न निकल गयी। इसकी परख बहिरागामी के द्रव को उड़ा कर की गयी। इसके बाद स्तम्भ को आसुत जल से धोया गया और साधारण रूप से विस्थापन प्रक्रिया की गयी। इससे पदार्थ शुद्धीकरण स्तम्भ में से निकलकर पृथक्करण स्तम्भ पर आ गये।

शुद्धीकरण के इस उदाहरण में एक ऐसी बात है जिसको आयनविनियम स्तम्भों से कार्य करते समय ध्यान में रखना चाहिए। जहाँ ऐसे विलयनों के साथ प्रयोग किये जाते हैं जिनमें घुली हुई गैसें हों, तो गैसों को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए जिससे स्तम्भों में से बाहर निकलने वाले विलयन में गैसें घुली हुई न हों। यदि भरे हुए स्तम्भ में हवा के बुलबुले आ जायें तो स्तम्भ की कार्य-क्षमता में तो अधिक अंतर नहीं पड़ता, पर स्तम्भ में द्रव-प्रवाह की समगति पर काफ़ी

प्रभाव पड़ता है। यदि बुलबुले बड़े हों तो स्तम्भ टूट जाता है और इससे द्रव-प्रवाह बिलकुल बंद हो सकता है। यदि ऐसा हो जाये तो स्तम्भ में से द्रव्य को निकालने की विधि यह है कि उसकी रेजिन को खूब चला दिया जाये जिससे गैस बाहर निकल जाये। ऐसा करने पर पृथक्करण दुबारा करना पड़ता है।

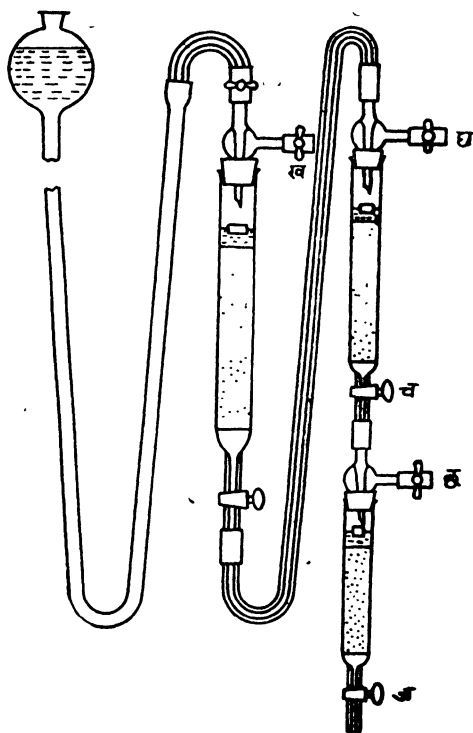
ऐलकोहल विलयन से जलीय विलयन में परिवर्तन अथवा जलीय विलयन से ऐलकोहलीय विलयन में परिवर्तन करते समय ध्यान देना चाहिए। जल की अपेक्षा ऐलकोहल में वायु काफ़ी विलेय है; अतः जब जलीय ऐलकोहल के विलयन को जल से तनु किया जाता है तो वायु निकलती है। इस परेशानी से बचने के लिए परिवर्तन करते समय विलयनों को एक या दो मिनट के लिए निर्वात में रखना चाहिए जिससे उनकी गैस निकल जाये। जिन विलयनों को ठंडे स्थान पर देर तक रखा जाता है उनको स्तम्भ में लगाने के पहले गैस-रहित करना आवश्यक है। जब भास्मिक स्तम्भों का प्रयोग किया जाता है, तो कार्बन डाइआक्साइड से मिलावट को रोकना चाहिए; इसका रोकना कम कठिन है। चालू करने वाले विलयन को पहले बतायी विधि द्वारा कार्बन डाइआक्साइड से रहित कर लेना चाहिए। आमुत जल को भी गरम करके ठंडा करना आवश्यक है। कार्बन डाइआक्साइड के सूक्ष्म अंश भास्मिक रेजिन द्वारा अवशोषित कर लिये जाते हैं। विस्थापन के समय इनका सांद्रण बढ़ जाता है और ये गैस की विलेयता से काफ़ी बढ़ जाते हैं।

चित्र २० में तीन स्तम्भों की समुचित व्यवस्था दिखायी गयी है।

अनेक स्तम्भों की कार्यवाही

स्तम्भों को उनकी माप के अनुसार और व्यवस्था की सुगमता के आधार पर एक के बाद एक अथवा ऊपर नीचे करके लगाया जा सकता है। विस्थापी द्रव के पात्र को सबसे बड़े स्तम्भ के प्रवेश-सिरे से यू-नली द्वारा जोड़ना चाहिए जिससे यू-नली का सबसे निचला भाग सबसे छोटे स्तम्भ के निचले भाग से थोड़ा नीचे रहे। ऐसा करने से दुर्घटनावश स्तम्भ सूख नहीं पाते। जब स्तम्भ को स्वतःचाली^१ अंश-एकत्रक^२ से जोड़ दिया जाता है तब भी ऐसा करने पर सुगमता रहती है; क्योंकि स्तम्भ में द्रव बिना ध्यान दिये ही अपने आप बहता रहता है। विस्थापी पात्र

में इतना द्रव भर दिया जाता है कि स्तम्भ सूखने न पाये और वह संतृप्त हो जाये। ऐसा करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि अंश-एकत्रक में अंशों का पूरा आयतन समा सके।



चित्र २०—अनेक स्तम्भों के लिए उपयुक्त व्यवस्था

मिश्रित विलयशीलों के विलयन को स्तम्भ में लगाने के पहले इन बातों पर ध्यान देना चाहिए—स्तम्भ धुला हुआ और चालू अवस्था में हो, तथा सारी रोध-निर्या^१ और पेंचदार क्लिप बंद हों। पहले, बड़े स्तम्भ में रेज़िन के ऊपर द्रव की

1. Stopcorks

क्र०—८

सतह ठीक की जाती है। पात्र और यू-नली को, जिसमें विलयन पहले ही भर दिया गया हो, (क) स्थान पर लगाया जाता है और पेंचदार क्लिप को (क) पर से खोल दिया जाता है। ऐसा करने पर द्रव की थोड़ी मात्रा बड़े स्तम्भ में टपकने लगेगी; उसका टपकना तब बंद हो जायेगा जब इस स्तम्भ के ऊपर वायु का दाब पात्र में भरे द्रव के दबाव से कुछ अधिक हो जाये। जब थोड़ी मात्रा में द्रव लगाना हो तो (क) से विच्छेदन करने में सुगमता रहती है। इस दशा में यू-नली और द्रव-पात्र के स्थान पर पृथक्कारी कीप का प्रयोग अधिक सुगम होता है।

जब बढ़ा हुआ दाब बड़े स्तम्भ में समा जाता है तो रोधनी (ग) को खोला जा सकता है। ऐसा करने पर थोड़ा द्रव बीच वाले स्तम्भ में दौड़ जायेगा क्योंकि बड़े स्तम्भ में दाब अधिक है। इसी प्रक्रिया को रोधनी (च) से भी दुहराया जाता है और अंत में रोधनी (ज) को खोल दिया जाता है जिससे द्रव-प्रवाह आरंभ हो जाता है। रोधनी और पेंचदार क्लिपों को इसी क्रम में सावधानी से चलाना चाहिए, क्योंकि स्तम्भ पर वातावरण के दाब और ताप का प्रभाव हो सकता है; यदि खिचाव के कारण कहीं द्रव पीछे के स्तम्भ में बहने लगे तो स्तम्भ के नीचे लगी शीशा-ऊन की गद्दी उछलकर अलग हो सकती है। यदि कहीं ऐसा हो गया तो स्तम्भ को दुबारा भरना पड़ता है। इसी कारण से द्रव-सतहों का ठीक निर्धारण और उनकी नियम-पूर्वक कार्यवाही अति आवश्यक है। आरंभ से गतिविधि इस प्रकार है—पहले पेंचदार क्लिप (क) को खोलिए जिससे द्रव नीचे टपके। तत्पश्चात् उसे बंद कर दीजिए। ऐसा करने पर प्रवाह धीरे-धीरे कम होकर रुक जायेगा। इस दशा में सारे स्तम्भ कुछ निम्न दाब पर होते हैं। तब पेंचदार क्लिप (ख) को खोला जाता है और द्रव को फिर टपकने दिया जाता है जिससे बड़े स्तम्भ में द्रव की सतह उपयुक्त उँचान तक आ जाये। तत्पश्चात् रोधनी (ग) को बंद किया जाता है; फिर पेंचदार क्लिप (ख) को बंद किया जाता है और पेंचदार क्लिप (क) को खोल दिया जाता है। अब बड़े स्तम्भ में इतना दाब हो जायेगा जिससे उसकी कार्यवाही चल सके। अब सतह बराबर करने वाली प्रक्रिया को बीच वाले स्तम्भ में पेंचदार क्लिप (घ) को खोलकर लगाया जाता है; उसे खुला रहने दिया जाता है, जब तक द्रव ठीक सतह पर न आ जाये; तत्पश्चात् रोधनी (च) को बंद कर दिया जाता है, पेंचदार क्लिप (घ) को बंद कर दिया जाता है और रोधनी (ग) को खोल दिया जाता है। इससे बीच वाला स्तम्भ कार्यवाही दाब पर आ जाता है। छोटे स्तम्भ पर भी इसी विधि को दुहराया जाता है।

कभी-कभी प्रयोग चलते समय द्रव की सतहों को ठीक करना आवश्यक होता है, अतः सारे प्रयोग के लिए किसी क्रम को बना लेना वांछनीय है।

जब बड़े स्तम्भ के ऊपर लगे शीशे के पात्र में से अथवा यू-नली और द्रव-पात्र में से मिश्रित विलयशीलों के विलयन का अंतिम भाग बह जाये तो स्तम्भ पर थोड़ा आसुत जल चलाना ठीक होता है, जिससे परख-द्रव का अवशिष्ट भाग स्तम्भ पर आ जाये। जैसे ही आसुत द्रव शीशे के पात्र में समाप्त हो, वैसे ही विस्थापी द्रव का लगाना ठीक होता है। सल्फोनेटेड पालीस्टीरीन के साथ विस्थापी द्रव साधारणतया सोडियम हाइड्राक्साइड का विलयन होता है, साधारण ताप पर अमीनो-अम्लों के पृथक्करण के लिए ०.०७५ नार्मल सोडियम हाइड्राक्साइड का उपयोग करना चाहिए, उसका सांद्रण कम भी हो सकता है, जैसा पहले बताया जा चुका है। बहिरागामी का एकत्रण तब तक आवश्यक नहीं जब तक वह अम्लीय नहीं होता या स्तम्भ पर दिखाई देने वाली पट्टी बिल्कुल नीचे की ओर ग्विसक नहीं आती। पहले के अंश वस्तुतः शुद्ध जल के रूप में होते हैं।

द्रव के प्रवाह की गति ऐसी होनी चाहिए, कि बढ़ने वाला अग्रभाग स्तम्भ में ५ सेंमी० प्रति घंटे की रफ्तार से नीचे बड़े। यदि प्रवाह की गति को इससे भी धीमा कर दिया जाये तो पृथक्करण अधिक अच्छा होता है, किन्तु प्रयोग की अवधि काफी अधिक हो जाती है। प्रवाह की गति को नियंत्रित करने का एक अच्छा तरीका यह है कि लगभग ४ सेंमी० लंबी मोटी दीवार वाली केश-नलिका छोटे स्तम्भ के निचले सिरे पर लगा दी जाये। केश-नलिका में स्टेनलेस स्टील का एक तार रख दिया जाता है जिसका व्यास केश-नलिका के व्यास से कुछ कम होता है। यदि इस तार का अधिक भाग केश-नलिका में हो तो गति धीमी हो जाती है और यदि कम भाग अंदर रहे तो गति तीव्र हो जाती है; इस प्रकार गति का नियंत्रण किया जा सकता है। पात्र में भरे द्रव की उंचान को भी घटा-बढ़ाकर प्रवाह की गति दुरुस्त की जा सकती है। पर यह विधि ठीक नहीं है क्योंकि क्षार के अवशोषण से रेजिन सिकुड़ जाती है। फलतः स्तम्भ में प्रवाह का अवरोध कम हो जाता है जिससे कभी-कभी प्रयोग के अंत में आरंभ की अपेक्षा प्रवाह-गति दुगुनी हो जाती है।

अंश-एकत्रक निम्नलिखित तीन सिद्धांतों में से किसी एक पर काम करते हैं—(क) बराबर आयतन, (ख) मध्यान्तर का निश्चित समय, अथवा (ग) बूंदों का गिनना। यदि मध्यान्तर का समय निश्चित रखा गया है तो प्रवाह-गति में

अधिक वृद्धि होने पर अंश-एकत्रक भर सकता है और द्रव बाहर बहना आरंभ कर सकता है।

जब अंशों में सोडियम आने लगे तो द्रव के प्रवाह को फ़ौरन बंद कर देना चाहिए। सोडियम की जाँच के लिए प्लैटिनम तार से ज्वाला पर परख इस मतलब के लिए पर्याप्त है।

अंशों का लक्षण-निर्धारण

अंशों के एकत्र करने के पश्चात् यह आवश्यक है कि प्रत्येक अंश की रचना ज्ञात की जाये। रचना जानने के लिए प्रत्येक अंश में से एक-एक बूंद ली जाती है और उसको क्रमिक कागज़^१ क्रोमैटोग्राम पर लगाया जाता है। ऐसा करने के पहले प्रत्येक श्रेणी के अंत के कुछ अंशों की एक-एक बूंद लेना और उनको जाँचना लाभदायक होता है। इनको छनने-कागज़ के एक छोटे ताव पर लगाया जाता है; तत्पश्चात् उसको सुखाकर उस पर साधारण विधि से निनहाइड्रिन अथवा दूसरे उपयुक्त प्रतिकर्मक^२ की फुहार छोड़ी जाती है। ऐसा करने पर सब आवश्यक अंशों को अलग कर देने में सुविधा होती है। क्रमिक क्रोमैटोग्राम के दो प्रयोग करने चाहिए जिससे दो विलायकों का प्रयोग हो सके। अमीनो-अम्लों के लिए फ़्रीनोल-ऐसीटिक अम्ल और ब्यूटेनल-ऐसीटिक अम्ल लिये जा सकते हैं। यदि प्रोटीन के जल-विश्लेषित अथवा प्रोटीन के मिश्रण लिये गये हैं, तो ज्ञात होगा कि निनहाइड्रिन प्रतिक्रिया के फलस्वरूप धब्बों के क्रम में कुछ स्थान रिक्त रह जाते हैं। उदाहरणतया, अमोनिया की उपस्थिति में लाइसीन और आर्जीनीन के बीच में अमीनो-अम्लों के क्रम में एक स्थान रिक्त रहता है। जब विलयशीलों वाले अंशों के क्रम की सीमाओं को जानना हो तो इन रिक्त स्थानों की संभावनाओं को भूलना नहीं चाहिए। जब क्रमिक कागज़ क्रोमैटोग्रामों द्वारा अंशों का पूर्ण क्रम ज्ञात हो जाता है तो यह निश्चित किया जा सकता है कि विलयशीलों को पृथक् करने के लिए किन अंशों को मिलाया जाये, किन अंशों को फेंक दिया जाये और किन अंशों को दुबारा पृथक् किया जाये।

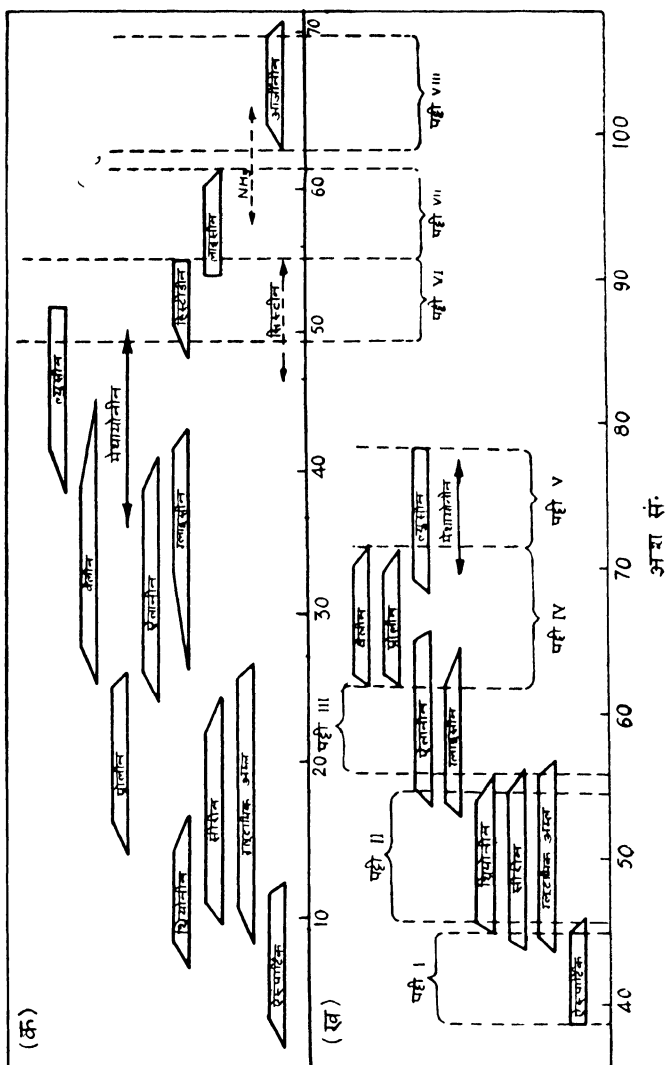
विलयशीलों के विस्थापन का क्रम

यदि तीन अम्लीय रेज़िन, जैसे सल्फ़ोनेटेड पालीस्टीरीन, अथवा तीव्र भास्मिक रेज़िन, जैसे डावेक्स २, को लिया जाये तो विस्थापन का क्रम उनके pK मानों द्वारा ज्ञात हो सकता है, इसमें संयोजकता अथवा “बैन डर वाल” के बलों से कुछ प्रभाव अवश्य पड़ता है। पार्टिज़ एवं ब्रिम्ले (१२) ने एक सारणी बनायी है जिसमें उन्होंने प्रयोगों से प्राप्त क्रम और pK मानों से ज्ञात क्रम की तुलना की है। यह सारणी दो रेज़िनो के लिए है—सल्फ़ोनेटेड पालीस्टीरीन और तीव्र भास्मिक डावेक्स २।

(सारणी अगले पृष्ठ पर देखे)

सारणी ३

पालीस्टीरीन			डावेक्स २			
ऐस्पार्टिक अम्ल	}	pk,	१.८८	लाइसीन	p ⁺ ₃	१०.५३
हाइड्राक्सीप्रोलीन		pk ₁	१.९२	प्रोलीन	p ⁺ ₂	१०.६०
थ्रियोनीन		—	—	बीटाऐलानीन	pk ₂	१०.१९
सीरीन	}	pk ₁	२.२१	ऐलानीन	pk ₂	९.६९
ग्लूटामिक अम्ल		pk ₁	२.१९	वैलीन	pk ₂	९.६२
प्रोलीन	}	p ⁺ ₁	१.९९	ल्युसीन	pk ₂	९.६०
ग्लाइसीन		pk ₁	२.३४	ग्लाइसीन	pk ₂	९.६०
ऐलानीन	}	pk ₁	२.३४	कार्नासीन	pk ₃	९.५१
वैलीन		pk ₁	२.३२	थ्रियोनीन	—	—
मेथायोनीन	}	pk ₁	२.३८	सीरीन	pk ₂	९.१५
ल्युसीन		pk ₁	२.३६	हिस्टीडिन	p ⁺ ₃	९.१७
सिस्टीन		pk ₂	२.२६	मेथायोनीन	pk ₂	९.२१
क्रीएटीन		pk ₁	३.० *	मेथिल हिस्टीडिन	pk ₃	८.८५
फिनाइल ऐललीन		pk ₁	१.८३	सिस्टीन	pk ₃	७.८५
बीटा-β-ऐलानीन		pk ₁	३.६०	टायरोसीन	pk ₂	९.११
ट्राइमेथिल अमीन		pk	४.५ *	ऐसीटिक अम्ल	p ⁺ ₁	४.७५
आक्साइड			*			
क्रीएटीनीन		pk	४.८	ग्लूटामिक अम्ल	p ⁺ ₂	४.२५
हिस्टीडिन		pk ₂	६.०	ऐस्पार्टिक अम्ल	p ⁺ ₂	३.६५
मेथिलहिस्टीडिन		pk ₂	६.४८	हाइड्रोक्लोरिक अम्ल	—	—
कार्नासीन		pk ₂	६.८३			
ऐन्सीरीन		pk ₂	७.४			
हाइड्राक्सीलाइसीन		—	—			
लाइसीन		pk ₂	८.९५			
अमोनिया		pk	९.२७			
आर्जीनीन		p ⁺ ₂	९.०४			
मेथिल अमीन		pk	१०.६४			



चित्र २१ 'क', 'ख'—अमीनो-अम्लों के पृथक्करण को दिखाते हुए क्रमिक कागज-क्रोमेटोग्राफी के काल्पनिक चित्र (देखिए—पठनीय सामग्री - उल्लेख सं० १२, पार्टिज एवं ब्रिग्ले के आधार पर)

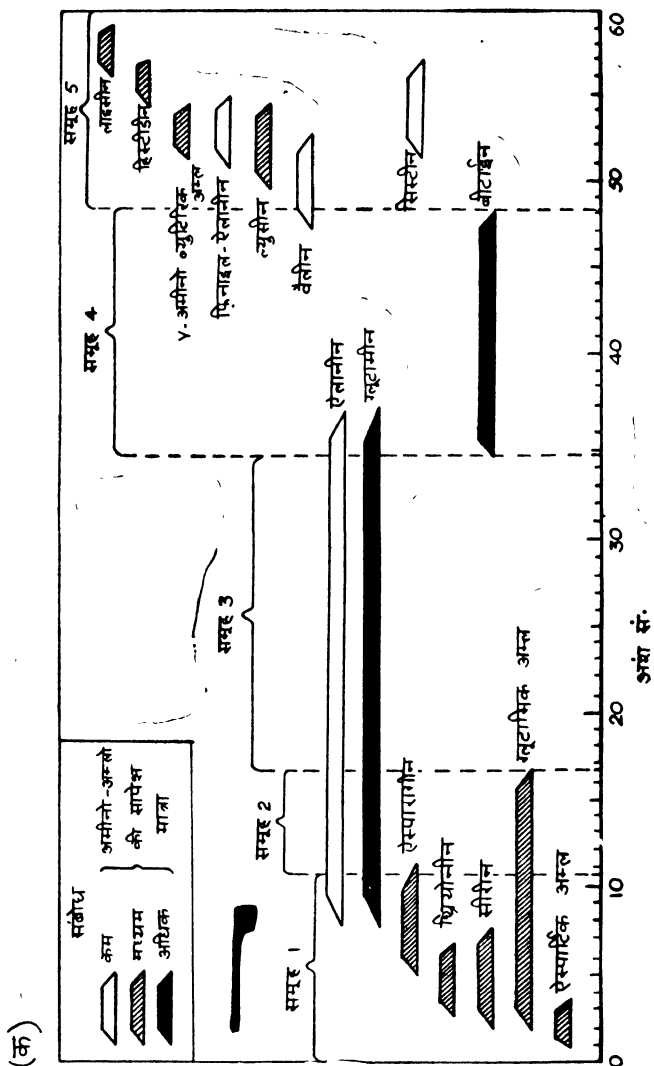
चित्र २१ (क) एवं (ख) में क्रमिक कागज क्रोमैटोग्राम प्रदर्शित किये गये हैं; ये यीस्ट प्रोटीन के जल-विश्लेषित द्रव्य के, जिसमें से टायरोसीन और फ़िनाइल ऐलानीन पहले ही पृथक् कर लिये गये थे, हैं। चित्र (क) उस पृथक्करण का फल है जिसमें सल्फ़ोनेटेड पालीस्टीरीन के स्तम्भ का प्रयोग हुआ था और उसमें ४.५ प्रतिशत डाइवाइनिल बेंज़ीन की कड़ियाँ भी थीं; इस स्तम्भ पर विस्थापन सोडियम हाइड्राक्साइड के विलयन से किया गया था। अंशों के समूह बना लिये गये थे जिनसे पट्टियाँ VI, VII और VIII प्राप्त हुईं; इनमें मौजूद अमीनो-अम्लों को अलग पृथक् कर लिया गया। बाकी सब अंशों को एक में मिला लिया गया और उनको अमोनिया विलयन द्वारा ज़ियोकार्ब २१५ रेज़िन के स्तम्भ पर विस्थापन करके पुनः पृथक् किया गया, इसका चित्र (ख) है। इस रेज़िन के उपयोग से लाभ यह होता है कि अंशों के दूसरे समूह में जो अमीनो-अम्ल होते हैं, उनमें भास्मिक अमीनो-अम्लों के अतिरिक्त सारे अम्लों का एक सुगम समूह बन जाता है। ज़ियोकार्ब २१५ में सल्फ़ोनिक समूहों के अलावा फ़िनालिक हाइड्राक्सिल समूह भी होते हैं और इस कारण “बैन डर वाल” के प्रभाव भी अधिक होते हैं; फलतः विस्थापन के क्रम में प्रोलीन को आगे बढ़ना सल्फ़ोनेटेड पालीस्टीरीन रेज़िन की अपेक्षा घट जाता है। फ़िनालिक हाइड्राक्सिल समूह सात pH से अधिक क्षारीय pH के मानों पर सक्रिय होते हैं और इनके कारण भास्मिक अमीनो-अम्लों का पृथक्करण अच्छा नहीं होता। इस रेज़िन की दुहरी प्रक्रिया के कारण उसकी अवशोषण-क्षमता, क्षारीय pH के मानों से उदासीन pH मानों तक बदलती रहती है। पार्टिज़ एवं वेस्टल (१६) ने कई विलयशीलों के समताप-वक्र बनाये। विस्थापी विलयनों और विस्थापित विलयशीलों के सांद्रणों की टिज़ेलियस की ग्राफ़ीय विधि, जिसको पहले बताया जा चुका है, द्वारा गणना की गयी।

चित्र २१ में दिखायी गयी पट्टियों को जिनमें एक से अधिक अमीनो-अम्ल हैं, दूसरे प्रयोग द्वारा पृथक् किया जा सकता है। दूसरे प्रयोग में तीव्र भास्मिक रेज़िन के तीन स्तम्भ लिये जाते हैं और उनका विस्थापन हाइड्रोक्लोरिक विलयन से किया जाता है। अमीनो-अम्लों के युग्म (ल्युसीन-आइसोल्युसीन एवं सीरीन-थ्रियोनीन) इस प्रयोग से भी पृथक् नहीं हो पाते; काफ़ी बड़े स्तम्भों को लेने से ही उनका पृथक्करण संभव होता है। व्यवहार में, अलग हुए अंशों को इसी क्रम में दुबारा या तिबारा चलाने से लाभ होता है। ऐसा तब तक करना चाहिए जब तक पर्याप्त पृथक्करण न हो जाये। इसके बजाय दूसरी विधि यह भी हो सकती है—अंशों के

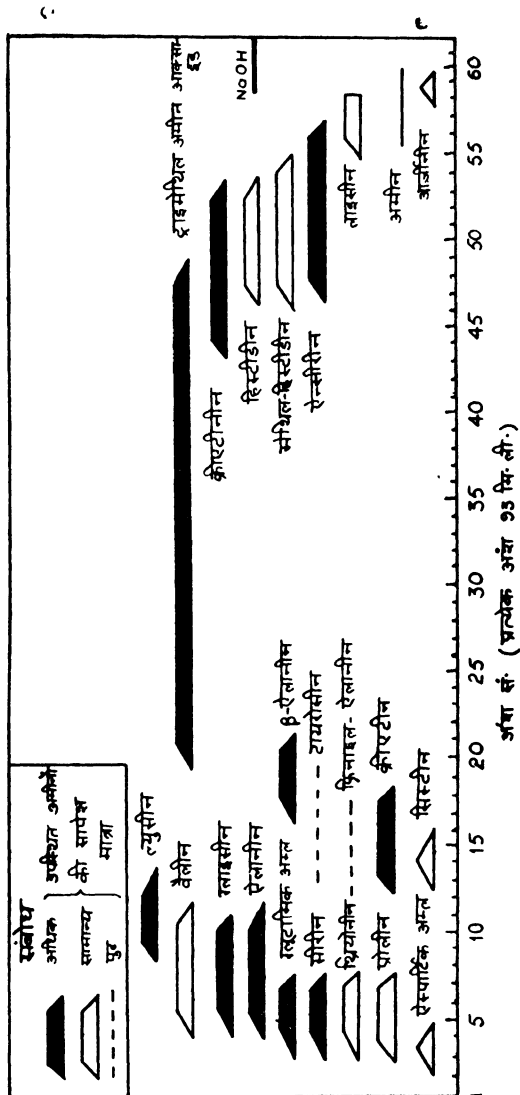
पहले क्रम को तीन विभागों में बाँट लिया जाता है। उदाहरणतया, पहले में थ्रियोनीन अधिक होती है, दूसरे में सीरीन और तीसरे में बिना अलग हुई मिश्रित पट्टियाँ। यदि अधिक थ्रियोनीन वाले कई अंशों को एक साथ मिला लिया जाय तो एक ही प्रभाजन से काफी अच्छा पृथक्करण हो जाता है।

चित्र २२ में चुकंदर एवं हैडक मांसपेशी के रसों के प्रभाजन प्रदर्शित किये गये हैं। इन दोनों रसों की सफाई का वर्णन पहले ही किया जा चुका है। किन्तु इनमें से किसी की भी काठकोयले से प्रक्रिया नहीं की गयी जिससे गंधित अमीनो-अम्ल निकल आये। चुकंदर के रस का प्रयोग ग्लूटामीन की थोड़ी मात्रा को प्राप्त करने के लिए किया गया। ज़ियोकार्ब २१५ का उपयोग किया गया और विस्थापी विलयन ०.१७ नार्मल अमोनिया का था। आर्जीनीन को निकालने की चेष्टा नहीं की गयी, क्योंकि अभास्मिक अमीनो-अम्लों के उपयुक्त समूह और अच्छे पृथक्करण के लिए ऐसे pH का होना ज़रूरी है जिसमें ग्लूटामीन भी आ जाये। चालीस पौड चुकंदर का रस निकाला गया और पहले वर्णित विधि द्वारा उसे लेड ऐसीटेट से साफ़ किया गया। स्तम्भ में साधारण विधि से लगाकर इसका विस्थापन किया गया। दूसरे समूह के अंशों का दुबारा पृथक्करण डी-ऐसीडाइट बी (D-acidite B) के स्तम्भ पर किया गया। यह हल्की ऋणायन विनिमय रेज़िन होती है और विभिन्न अंशों में से ग्लूटामिक अम्लों को पृथक् कर लेती है। बहिरागामी में तीसरे समूह के अंशों को मिला दिया गया और इन सब अंशों से केलासित ग्लूटामीन को निकालने का प्रयास किया गया। चौथे समूह के अंशों को एक में मिलाकर बीटाईन प्राप्त की गयी। अंशों (५२, ५३ और ५४) को मिलाकर ज़ियोकार्ब २१५ के छोटे स्तम्भ पर पृथक् किया गया। उसके फलस्वरूप जो अंश प्राप्त हुए उनमें केवल गामा अमीनो ब्यूटिरिक अम्ल विद्यमान था। इन प्रयोगों द्वारा ५० ग्राम से अधिक ग्लूटामीन, लगभग ३० ग्राम बीटाईन और ३ ग्राम गामा अमीनो-ब्यूटिरिक अम्ल प्राप्त किये गये। ये सब काफी शुद्ध अवस्था में थे।

धनायन रेज़िनों पर पौधों के रसों से अमीनो-अम्लों का पृथक्करण तब कठिन होता है जब काफी मात्रा में ऐस्परागीन विद्यमान हो। ऐस्परागीन का थोड़ा विच्छेदन हो जाता है जिससे ऐम्पाटिक अम्ल और अमोनिया बनते हैं। फलतः ऋणायन रेज़िन पर इनका पृथक्करण सरल हो सकता है। ग्लूटामिन से परेशानी कम होती है।

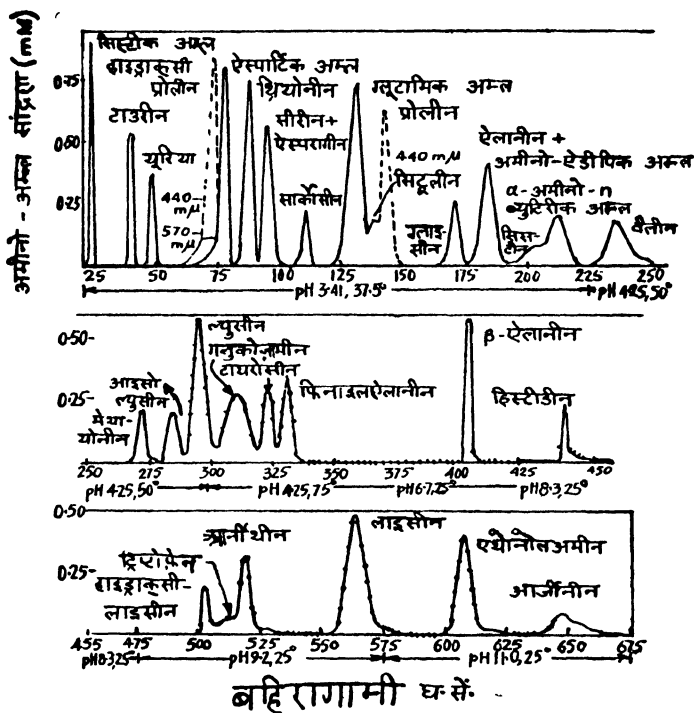


चित्र २२ 'क'—चूकन्दर के रस का प्रभाजन (देखिए -- पठनीय सामग्री-उल्लेख सं० ९४, वेस्टल के आधार पर)



चित्र २२ 'ख'—हैडक मांसपेशी के रस का प्रभाजन (देखिए—पठनीय सामग्री -
उल्लेख सं० ९५)

हैडक मांसपेशी के सार में तीव्र भास्मिक द्रव्यों के होने की आशा थी। इसको साफ़ करने की और स्तम्भ में लगाने की विधि का पहले ही वर्णन किया जा चुका है। विस्थापन ०.०७५ नार्मल सोडियम हाइड्राक्साइड से किया गया। क्रमिक कागज़ क्रोमेटोग्राम से जो फल प्राप्त हुए उनको चित्र २३ के निचले भाग में प्रदर्शित किया गया है। प्रोटीन के जल-विश्लेषित द्रव्यों में जो अमीनो-अम्ल पाये जाते हैं, उनके अतिरिक्त इसमें क्रीएटीन, ऐलानीन, ट्राइमेथिल-अमीन-आक्साइड, क्रीएटीनीन



बहिरागामी घट से-

चित्र २३—निष्कासन विधि द्वारा अमीनो अम्लों का पृथक्करण (देखिए—पठनीय सामग्री - उल्लेख सं० ९७, मूर एवं स्टाइन)

मेथिल हिस्टीडीन, ऐन्सीरीन और मेथिल अमीन भी प्राप्त हुई। जिन अंशों में केवल ट्राइमेथिल अमीन आक्साइड थी उनको एक में मिला लिया गया और इस द्रव्य को उसके हाइड्रोक्लोराइड के रूप में केलासित कर लिया गया। १०.५ ग्राम

द्रव्य प्राप्त हुआ। अंश ४७-५५ को मिलाकर डावेक्स २ के तीन स्तम्भों पर दुबारा प्रभाजन किया गया। इस प्रयोग से केवल ऐन्सीरीन के अंशों को एकत्र किया गया; इन्से ५ ग्राम शुद्ध ऐन्सीरीन प्राप्त हुई। अंश ५६-६० में वाष्पशील अमीनों थीं। इनको जेम्स, मार्टिन एवं हावर्ड स्मिथ की गैस-द्रव विभाजन विधि से पहचाना गया। इसमें अधिकांशतः तो अमोनिया थी पर ५८ और ५९ अंशों में मेथिल अमीन भी पाये गये।

आयन-विनिमय रेज़िनों को काम में लाकर निष्कासन विधियाँ

यदि जल से निष्कासन किया जाय तो प्रयोग में काफ़ी समय लगता है, क्योंकि “वितरण गुणक”^{११} रेज़िन फ़ेज़ के लिए काफ़ी अधिक होता है; प्रतिरोधों अथवा आयनीय विलयनों (जिनका चार्ज रेज़िन के समान हो) से निष्कासन संभव है। अमरीका में मुख्यतया मूर एवं स्टाइन तथा स्पेडिंग और उनके साथियों ने इन निष्कासन विधियों का खूब उपयोग किया है। मूर एवं स्टाइन (९७) ने अमीनो-अम्लों के लिए सोडियम प्रतिरोधों का निष्कासक की भाँति प्रयोग किया और डावेक्स ५० रेज़िन का उपयोग किया। यह विधि पहले वर्णित विभाजन विधि से अच्छी सिद्ध हुई। इस विधि में प्रयोग आरंभ करने में समय अधिक लगता है, बूंद गिनने के उपयुक्त यंत्र की आवश्यकता पड़ती है और पहले से काफ़ी योजना भी बनानी होती है। इन कारणों से पाठकों से निवेदन है कि वे इन वैज्ञानिकों का मौलिक शोध-निबंध पढ़ें, किन्तु यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि अमीनो-अम्लों के निर्धारण के लिए सबसे अच्छी विधि यही है। इन वैज्ञानिकों ने १०० सेंमी० लंबे स्तम्भ का, जिसका व्यास ०.९ सेंमी० था, उपयोग किया। रेज़िन २५०-५०० मेश प्रति इंच वाले दानों की थी। स्तम्भधारक जेल्माइस्टर-चोलनो की भाँति का था; इसके जोड़ घिसे हुए शीशे से बने थे और इसके निचले सिरे पर सिटर्ड^{१२} शीशे का तनुपट था। तनुपट के नीचे वाली नली की छोटी लंबाई ऊपरी स्तम्भ से थोड़ी ही सँकरी थी, जिससे वहिरागामी छोटी नली के अंदर चले; १ मिलीलीटर के अंशों को एकत्र किया गया। स्तम्भधारक को एक आवरण में रख दिया जाता है, जिसमें गरम पानी भेजकर निश्चित ताप को नियत रखा जा सके। प्रत्येक प्रयोग में कई

प्रतिरोधों और कई तापों पर काम किया जाता है। प्रवाह की गति काफी धीमी होती है, लगभग ४ मिलीलीटर प्रति घंटा। इस प्रकार, सारे प्रयोग में ५ दिन लगते हैं। नमूने की मात्रा कम ली जाती है। इसकी यथार्थता स्टार्च-स्तम्भों के समान रहती है अर्थात् ०.१-०.५ मिलीग्राम अमीनो-अम्लों का ३ प्रतिशत तक निर्धारण हो सकता है। तीन सबसे अधिक भास्मिक अमीनो-अम्लों के लिए यह यथार्थता और कम हो जाती है। चित्र २३ इस शोध-निबंध (९७) में से लिया गया है; इस विधि की असाधारण पृथक्कारी क्षमता इससे स्पष्ट है।

डा० स्पेडिंग की प्रयोगशाला में जो कार्य किया गया वह सरल निष्कासन विधि की अपेक्षा अधिक जटिल है। स्तम्भों में ऐम्बरलाइट^१ आई० आर० १०० का उपयोग किया गया। यह सल्फोनेटेड फ़ीनोल-फ़ार्मेल्डीहाइड रेजिन होती है; स्तम्भ ३०-१०० × २.२ सेंमी० व्यास के थे। अमोनियम हाइड्राक्साइड को विभिन्न मात्रा में मिलाकर साइट्रिक अम्ल के विभिन्न विलयन बनाये गये। यह मालूम था कि प्रयोग की परिस्थितियों में इस विलयन के जटिल साइट्रेट यौगिक बनेंगे, अतः इस विधि की प्रक्रिया स्पष्ट नहीं है। फ़ैरडे सोसाइटी के वाद-विवादों में जो चित्र दिये गये हैं उनसे ऐसा मालूम पड़ता है कि निष्कासन के स्थान पर कभी कभी विस्थापन भी होने लगता है। इन विधियों द्वारा लैन्थेनम्, सीरियम, प्रेजीओडिमियम, नीओडिमियम और इट्रियम धातुओं को पृथक् किया गया है।

स्वीट, रीमाँ, बोयेकेनकाम्प (९८) ने डावेक्स ५० पर क्षार-धातुओं के सिलिकेट को लेकर तनु हाइड्रोक्लोरिक अम्ल द्वारा निष्कासन करके उनको पृथक् किया और उनका निर्धारण किया। आपका कहना है कि जो साधारण विश्लेषण विधियाँ हैं, उनकी अपेक्षा यह विधि अधिक अच्छी है।

बुश, हर्लबर्ट एवं पाटर (९९) ने क्रेब्स साइट्रिक अम्ल^२ साइकिल के अम्लों का फ़ार्मिक अम्ल के विभिन्न सांद्रणों द्वारा निष्कासन करके डावेक्स १ पर पृथक्करण किया है।

टामस और उनके साथियों (१००) ने डावेक्स २ पर हाइड्रोक्लोरिक अम्ल के सांद्रणों को बढ़ाकर कुछ न्यूक्लीओटाइडों का निष्कासन विधि द्वारा पृथक्करण किया है।

प्रोटीनों का पृथक्करण

क्रोमैटोग्राफी द्वारा प्रोटीनों के पृथक्करण की संभावना बड़ी महत्वपूर्ण है। हर्स, स्टाइन एवं मूर (१०१) ने निम्न अणुभार वाली दो भास्मिक प्रोटीनों के संतोषजनक निष्कासन पीक^१ प्राप्त किये; ये प्रोटीन राइबोन्यूक्लीएज^२ और लाइसोजाइम^३ थीं और इनमें कार्बाक्सिल रेजिनों पर प्रतिरोधों का उपयोग किया गया था। बोर्डमैन एवं पार्टिज (१०२) ने इन पदार्थों का सावधानी से अध्ययन किया है और आप उदासीन प्रोटीनों को, जिनके सम-विद्युत् बिन्दुओं^४ में केवल ०.६ pH का अंतर था, पृथक् करने में सफल भी हुए।

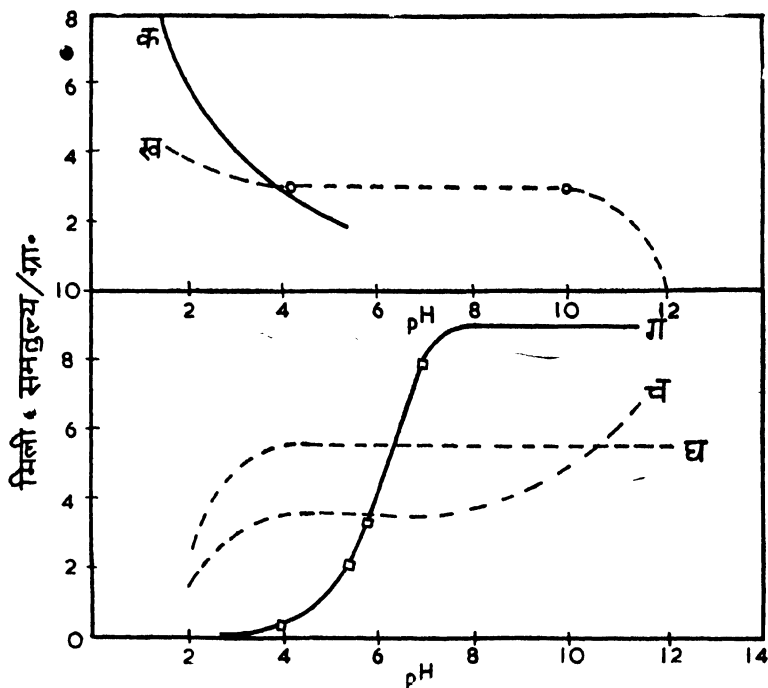
आयन विनिमय रेजिनों के अधिशोषक गुण-धर्म

आयन-विनिमय रेजिनो के साधारण व्यवहार की जानकारी उनके अनु-मापन वक्रों से की जा सकती है। उनके निर्धारण की विधि निम्नलिखित है। रेजिन की ज्ञात मात्रा को एक धारक में रखा जाता है, उसमें सोडियम क्लोराइड का विलयन, जिसमें अम्ल अथवा क्षार की ज्ञात मात्रा पड़ी हो, डाला जाता है। तत्पश्चात् रेजिन को खूब हिलाया जाता है। जब संतुलन अवस्था प्राप्त हो जाती है तो विलयन का pH ज्ञात कर लिया जाता है और उसके निर्धारित आयतन का^५ अनुमापन^६ pH कर लिया जाता है। इस प्रकार से प्राप्त परीक्षण-फलों से एक वक्र बना लिया जाता है, जिससे कि एक खास pH पर प्रति ग्राम शुष्क रेजिन के मिली-समतुल्य मालूम हो जाते हैं।

इन वक्रों को देखने से पता चलता है कि जिस pH मान पर अवशोषण सबसे अधिक होता है, वह कुछ हद तक लवण के सांद्रण पर आधारित होता है। जब लवण का सांद्रण बढ़ जाता है तो अम्लीय रेजिन अधिक अम्लीय pH पर अवशोषण आरंभ करती है और ऋणायन अधिक क्षारीय pH पर। यह आयन-विनिमय संतुलन के सिद्धांत से भी ठीक है। हेल एवं राइखेनबर्ग (१०३) ने यह सिद्ध किया है कि सल्फोनेटेड पालीस्टीरीन और कार्बाक्सिलिक रेजिन द्वारा सोडियम का

- | | |
|------------------|------------------------|
| 1. Elution peaks | 2. Ribonuclease |
| 3. Lysozyme | 4. Iso-electric points |
| 5. Aliquot | 6. Titration |

अवशोषण सोडियम आयन और हाइड्रोजन आयन सांद्रण पर निर्भर होता है। चित्र २४ में कई रेजिनों के परीक्षण-फल दिखाये गये हैं। क्रोमैटोग्राफी के दृष्टिकोण से तीव्र अम्लीय और तीव्र भास्मिक रेजिन अधिक अच्छे होती हैं, क्योंकि वे



चित्र २४—हाइड्रोजन आयन सांद्रण के साथ आयन-निविमय रेजिनों के लिए अवशोषण वक्र क—Dc-Acidite E ख—Dc-Acidite FF घ—Zcoarb 225 च—Zcoarb 215 C—carboxylic resin (0.1M. NaCl) (परमूटिड कम्पनी के डा० टी० आर० ई० फ्रेसमान की कृपा से) (देखिए—पठनीय सामग्री-उल्लेख सं० १०३, हेल एवं राइखेन वर्ग के आधार पर)

कमजोर रेजिन की अपेक्षा काफी विनिमय कर सकती हैं। कमजोर रेजिनों की प्रक्रिया धीमी होती है पर विशेष परिस्थितियों में उनका उपयोग लाभदायक होता है, जैसे अधिक आयनीकृत विलयशीलों का कमजोर आयनीकृत विलयशीलों से पृथक्करण, और कमजोर भास्मिक रेजिन साधारण रूप से पाये जानेवाले अमीनो-अम्लों में से केवल ऐस्पार्टिक और ग्लूटामिक अम्लों का अवशोषण करती हैं।

स्तम्भों को चालू करते समय जल से धोने के लिए साधारण नल के पानी को उपयुक्त स्तम्भ पर चलाकर तैयार किया जा सकता है। इस प्रकार धनायन-विनिमय रेजिन को नल के ऐसे पानी से धोया जा सकता है जो धनायन अवशोषक स्तम्भ पर से चलाया जा चुका हो।

यद्यपि यह क्रोमेटोग्राफी के क्षेत्र में नहीं है, तथापि यहाँ पर यह बताना आवश्यक है कि चालकता-जल^१ सापेक्ष चालकता—०.१ से ०.५ × १०^{-१} रेसी प्रो० ओम^२ को डी ऐसीडाइट एफ० एफ० और जियोकार्ब २२५ के बराबर मिश्रण वाली रेजिन पर नल के साधारण पानी को चलाकर प्राप्त किया जा सकता है। उलटकर धोने से रेजिनों को अलग करके चालू किया जा सकता है, क्योंकि उनके घनत्व विभिन्न होते हैं।

सारणी ४ में ग्रेट ब्रिटेन में प्राप्त कुछ रेजिनों के बारे में बताया गया है।

सारणी ४

रेजिन	प्रकार	दाम प्रति पौड
जियोकार्ब २१५	न्यूक्लियर, फ़ीनोल सल्फ़ोनिक	६।६
जियोकार्ब ३१५	न्यूक्लियर, उच्च ताप पर स्थायी	६।६
जियोकार्ब २२५	सल्फ़ोनेटेड पालीस्टीरीन	१३।६
जियोकार्ब २१६	कार्बाक्सिलिक	६।६
डी ऐसीडाइट ई	मध्यम भास्मिक	१३।६
डी ऐसीडाइट एफ. एफ.	तीव्र भास्मिक	२६।६

1. Conductivity water

2. Recip. ohm

जियोकार्ब २२५ हलकी कड़ियों से जुड़ी (साढ़े चार प्रतिशत) तक भी मिल सकती है; विस्थापन में अच्छे पृथक्करण के लिए इसी रेज़िन को मँगाना चाहिए। प्रयोगशाला के काम के लिए इन रेज़िनों के विशेष रूप से घुले रूप मिलते हैं। किन्तु प्रयोग के पहले उनको चालू करना आवश्यक है। जो दाम ऊपर बताये गये हैं, वे १-२८ पाँड तक के लिए हैं और जनवरी १९५२ के हैं।

अमरीका में अनेक प्रकार की रेज़िनें प्राप्य हैं। जिन रेज़िनों के दाम ऊपर बताये गये हैं, उनसे ये रेज़िनें बराबर दाम की बैठती हैं—

रेज़िन	प्रकार
एम्बरलाइट आई० आर० १००	फ़ीनोलिक मेथिलीन सल्फ़ोनिक
डावेक्स ५०	न्यूक्लियर सल्फ़ोनिक
एम्बरलाइट आई० आर० सी० ५०	कार्बाक्सिलिक
डावेक्स २	तीव्र भास्मिक

अध्याय ७

सहायक उपकरण

इस अध्याय में मुख्यतया अंश-एकत्रकों का वर्णन किया गया है। यदि क्रोमेटोग्राफी में अधिक कार्य करना हो तो ये लगभग आवश्यक ही हैं। हाथ में पात्र पकड़कर अंशों को एकत्र किया जा सकता है, किन्तु स्तम्भ में प्रवाह की गति को ठीक ठीक बताना संभव नहीं। फलतः, यह निर्णय करना होता है कि प्रयोग को असुविधाजनक समय में भी जारी रखा जाय, या थोड़ी देर के लिए प्रयोग को बन्द कर दिया जाय। ऐसा करने से स्तम्भ में द्रव के सम प्रवाह पर प्रभाव पड़ता है और इससे पृथक्करण खराब भी हो सकता है।

अब अच्छे अंश-एकत्रक उपकरणों का वर्णन किया जायगा।

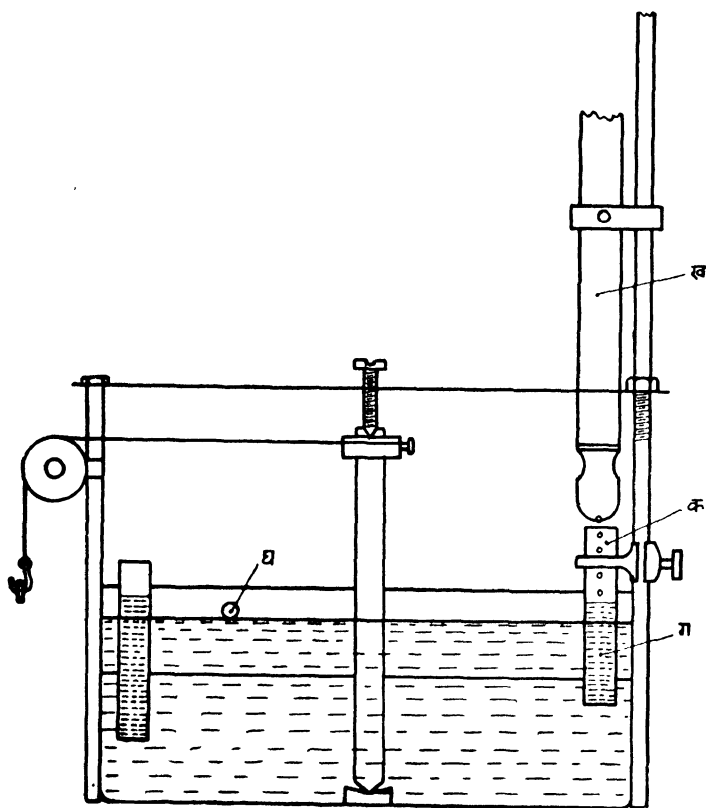
बूंदों का गिनना

स्टाइन एवं मूर (१०४) ने अमीनो-अम्लों के परिमाणात्मक परिमापन के लिए अपनी विधि में एक उपकरण का उपयोग किया। जब प्रत्येक बूंद गिरती थी तो वह प्रकाश-दण्ड^१ को बीच में से काटती थी; प्रकाश-दण्ड एक फोटो-सेल पर पड़ता था और यह फोटो-सेल आवेग-गणक^२ को चलाता था; आवेग-गणक अंश-एकत्रक की गति का नियंत्रण करता था। अंश लगभग १ मिलीमीटर या उससे भी कम होता था। अंश के आयतन का नियत होना द्रव के तल-तनाव^३ आदि पर निर्भर होता है। इन वैज्ञानिकों के प्रयोग में यह तल-तनाव बहुत उपयुक्त था, क्योंकि बहिरागामी विलयन मुख्यतया नियत रचना वाले पदार्थों का प्रतिरोध-विलयन होता है, इन प्रयोगों में ताप भी नियत रहता

1. Beam of light
3. Surface tension

2. Impulse-Counter

है। इस उपकरण के पूर्ण विस्तार के लिए पाठक कृपया मौलिक शोध-निबन्ध देखें।



चित्र २५—फिलिप्स द्वारा निर्मित अंश-एकत्रक (देखिए—पठनीय सामग्री-उल्लेख सं० १०५, फिलिप्स से परिवर्धित)

बूंदों के गिनने की विधि तभी विश्वसनीय होती है जब एक मिलीमीटर या उससे भी कम आयतन के अंश एकत्र किये जा रहे हों।

स्नो (१०५) महोदय ने एक सस्ते उपकरण को जुटाया। आपने “टेक्टर”

1. “Tektor”

उपकरण में परिवर्तन किया और इससे आवेग-गणक को चलाया और यह गणक अंश-एकत्रक को नियंत्रित करता था।

भार के अनुसार अंश-एकत्रण

यहाँ पर चार विविध उपकरणों का वर्णन किया जायगा—तीन १-२० मिलीलीटर अंशों के लिए उपयुक्त हैं और एक ५०-५०० मिलीलीटर तक के लिए।

फ़िलिप के आधार पर (१०५)

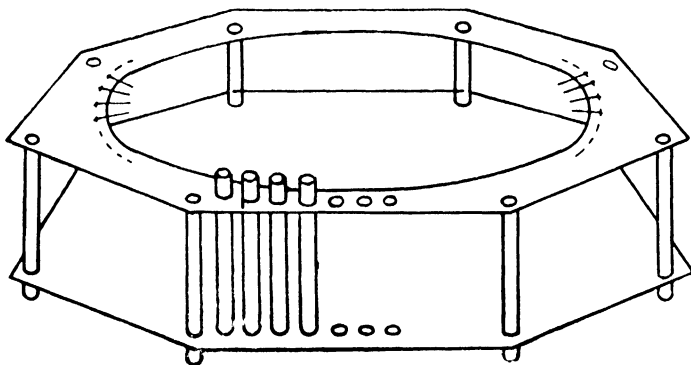
इसका बनाना कदाचित् सबसे सरल है। चित्र २५ में इसकी कार्य-प्रणाली दिखायी गयी है।

क्षितिज के समानान्तर सतह पर दो डिस्कें एक मध्यवर्ती त्कुए से जुड़ी होती हैं। इन दोनों डिस्कें की सारी परिधि पर छेद इस प्रकार होते हैं कि दोनों डिस्कें के किन्हीं दो छेदों के आर-पार शीशे की एक नमूना-नली^१ जा सके। उपकरण के इस भाग को एक पात्र में रखे जल में रखा जाता है। इन नमूना-नलियों के दोनों सिरों को क्षितिज के समानान्तर धरातल में दबा दिया जाता है; इस प्रकार ये पानी पर तैर सकती हैं। इनका कितना भाग पानी में डूबा रहेगा, यह उनमें टपके द्रव के भार पर निर्भर होता है। जब ये खाली होती है तो ऊपर तैर आती है, किन्तु इनकी गति चाकू-धार (क) से रोक दी जाती है। चाकू-धार को ऊपर नीचे उठाया जा सकता है। मध्यवर्ती त्कुए में एक छोटे भार, रस्सी और घिरी द्वारा तनाव दे दिया जाता है। स्तम्भ (ख) में से बहिरागामी नमूना-नली (ग) में टपकता है; इस प्रकार नली धीरे-धीरे भरती जाती है। जब द्रव का दाब अधिक हो जाता है तो नमूना-नली चाकू-धार (क) के नीचे दबकर बाहर निकल जाती है और दूसरी खाली नली फिर उसी स्थान पर आ जाती है। चित्र २५ में (घ) एक नली ऐसी है जो बाहर आ चुकी है।

इस उपकरण को सफलता-पूर्वक चलाने के लिए घर्षण-बलों^१ को बहुत कम होना चाहिए और नमूना-नली का सिरा चौकोर रखना चाहिए। कई एक नमूना-नलियों को लेकर उन पर नम्बर लगा देने चाहिए; प्रत्येक का खाली और भरी अवस्था में भार अंकित कर लिया जाता है।

जेम्स, मार्टिन एवं रेण्डल (१०६)

इन वैज्ञानिकों ने तीन उपकरणों का वर्णन किया है। पहले दो उपकरणों में ऐसा गोलाकार ढाँचा होता है, जिनमें $5/8$ इंच वाली १२० परख-नलियाँ



चित्र २६—अंश-एकत्रक के लिए परख-नलियों को रखने का लकड़ी का ढाँचा
(देखिए—पठनीय सामग्री-उल्लेख सं० १०६, जेम्स, मार्टिन
एवं रेण्डल से परिबर्धित)

आ सकें; इन सबमें बाहर खिंच सकनेवाली पिनें लगी होती हैं। इन पिनें की दिशा इस प्रकार होती है जो ढाँचे के मध्य से किरणों^२ के समान मालूम हो, (देखिए चित्र २६)।

चित्र २७ में एक ऐसे तराजू का दण्ड दिखाया गया है, जिसमें स्तम्भ से निकलते हुए बहिरागामी को एकत्र किया जाता है और उसको साइफनप्रक्रिया

अंश को बाहर निकालने की प्रक्रिया इस प्रकार है। हटनेवाले^१ फंदे का निचला सिरा परख-नली के घूर्णन के अक्ष^२ से थोड़ा आगे होता है। जब साइफ़न-नली खाली होती है, तो दण्ड झुक जाता है जिससे हटनेवाला फंदा किरण-दिशा में पिन से लग जाता है। जब साइफ़न-नली आधी भर जाती है, तो हटनेवाला फंदा नीचे आ जाता है और जुड़ी हुई किरण की दिशा में पिन से अलग हो जाता है। इससे दण्ड घूम जाता है और हटनेवाले फंदे का निचला सिरा दूसरी पिन से जाकर लग जाता है। साइफ़न-नली बराबर भरती रहती है और परख-नली में इसका द्रव आता रहता है, इससे दण्ड झुकता है और फंदा ऊपर उठता है, जिससे कि ऊपर वाला सिरा फिर पिन से जाकर लग जाता है। इस प्रकार एक प्रक्रिया पूरी हो जाती है।

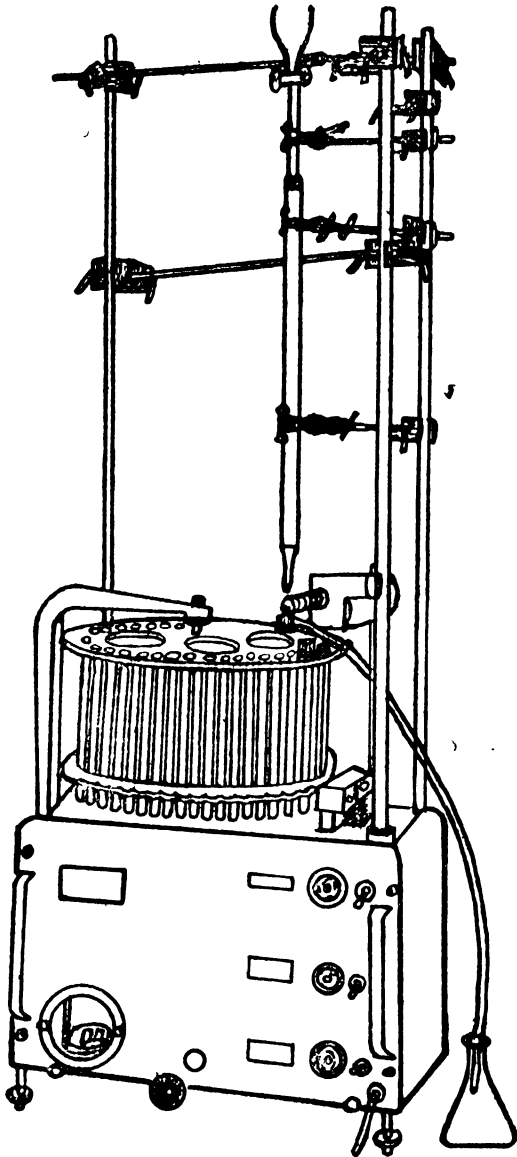
मध्यवर्ती खोखली डूबनेवाली नली को उठाकर अथवा नीचे करके साइफ़न-नली द्वारा डाले जानेवाले आयतन का नियंत्रण किया जाता है। नली का अन्दरूनी व्यास साइफ़न के बाहर वाली नली के व्यास, अर्थात् २ मिलीमीटर के बराबर होता है। यह एकत्रक ३० मिलीलीटर प्रति घंटे की प्रवाह-गति के लिए उपयुक्त है। प्रयोग की संतोषजनक प्रगति के लिए अंश का न्यूनतम आयतन ०.५ मिली-लीटर होना चाहिए।

इन वैज्ञानिकों ने जिस तीसरे उपकरण का वर्णन किया, वह इसी सिद्धान्त का अद्भुत परिवर्धन है। इसमें परख-नलियों के कई घेरे होते हैं। जब बा अन्दर वाले घेरे की सब परख-नलियाँ भर जाती है, तो साइफ़न-नली का द्रव डालनेवाला भाग दूसरे बड़े घेरे में जा पहुँचता है।

शैण्डन

यह उपकरण चित्र २८ में दिखाया गया है। यह (Shandon Scientific Company, 6 Cromwell Place, London. S. W. 7) से प्राप्य है।

इसमें पायरेक्स की लगभग एक ही भार की ५० परख-नलियाँ ली जाती हैं। अंश का भार ०.५ से लेकर १५ ग्राम तक हो सकता है। घूमनेवाली मेज एक मजबूत चबूतरे पर रखी जाती है। इस चबूतरे पर चलनेवाला मोटर



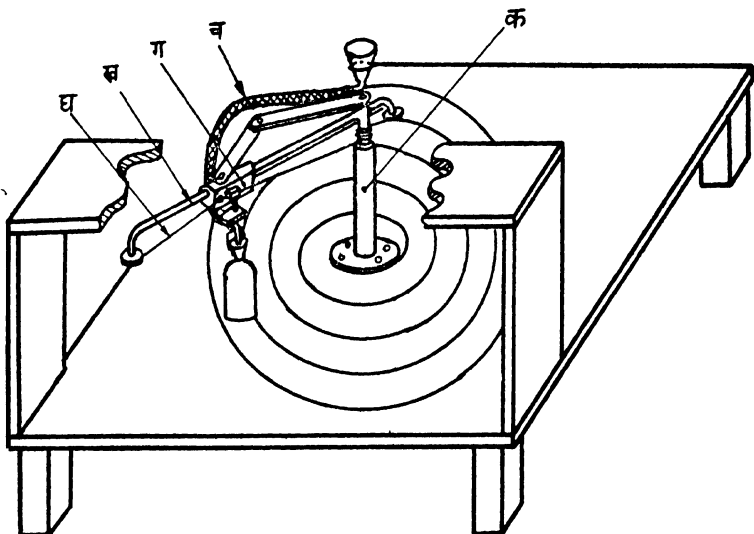
चित्र २८—शैण्डन कम्पनी का अंश-एकत्रक

(२००/२३० वोल्ट ५० साइकिल, अथवा ११० वोल्ट ६० साइकिल), अच्छी तुला और वैद्युत योक्त्र रखे होते हैं।

इसकी प्रक्रिया पूर्णतः स्वतःचाली होती है। जब ४९वीं परख-नली आती है तो बज्र-बज्र की आवाज होने लगती है और एक बत्ती जल जाती है। इस समय सारी परखनलियाँ निकाल ली जाती हैं और दूसरी खाली नलियाँ उनके स्थान पर रख दी जाती हैं। यदि ऐसा न किया जाय या विद्युत-धारा का चलना बन्द हो जाय तो ५०वीं परख-नली के भरने के बाद उपकरण का स्विच अपने आप बन्द हो जाता है और स्तम्भ के नीचे एक पात्र आ जाता है, जिसमें बेकार फेंका जानेवाला बहिरागामी एकत्र होता रहता है।

ब्रिम्ले एवं स्नो (१०७)

इस उपकरण से ५०-५०० मिलीलीटर तक के अंशों को एकत्र किया जा



चित्र २९—अंश-एकत्रक की साधारण व्यवस्था

सकता है। इतने बड़े अंशों के साथ धारकों को सुगमतापूर्वक स्थिर रखा जा सकता है और द्रव-एकत्रक के भर जाने पर एकत्रक हटाया जा सकता है। चित्र २९ में इस उपकरण का एक भाग दिखाया गया है। धारक २५० मिलीलीटर के होते हैं और वे ४० वर्ग इंच के एक स्टैंड में नम्बर से घुमावदार^१ (सर्पिल) रूप से रखे रहते हैं। मेज़ पर एक सेतु^२ होता है जिसमें प्रवृत्त करनेवाला^३ योक्त्र लगा होता है। चित्र में इसको कटा हुआ दिखाया गया है। बीच में एक खोखला डंडा (क) होता है और इससे धारकों का सर्पिल आरम्भ होता है। इसके साथ एक चलनेवाली भुजा (ख) होती है जो मेज़ के नीचे रखे मोटर और रिडक्शन योक्त्र (Klaxon Type HK 5080-M4 200 v. A.C., Capacitor reversing) से चलती है। चलनेवाली भुजा^४ तब कुए के ऊपर जुड़ी होती है और चलाने पर यह चार मिनट में एक चक्कर लगाती है।

चलनेवाली भुजा के साथ एक चलनेवाला भाग (ग) होता है, इसका स्थान एक अति लम्बे तार (घ) से शासित होता है; (घ) तीन बार बीच के डंडे के चारों ओर लिपटा रहता है। चलनेवाली भुजा के प्रत्येक सिरे पर घिरी लगी रहती है। (ग) का सर्पिल भाग एक मिनट में ४१ चक्कर लगाता है। मेज़ पर सर्पिल में रखे धारक इस प्रकार लगे होते हैं कि उनके बीच का भाग (ग) के अन्त में लगी द्रव डालनेवाली नली के बिल्कुल नीचे आ जाय। सर्पिल में रखे धारकों की एक दूसरे से दूरी महत्त्वपूर्ण नहीं है। द्रव डालनेवाली नली में शीशे की एक कीप रहती है और यह चलनेवाली भुजा के बीच में लगी रहती है। पारे का स्विच और पेंच एक डंडी से जुड़े होते हैं और यह डंडी (ग) से लगी होती है। पेंच साधारणतया बोतल के ऊपरी भाग पर ठहरा रहता है, किन्तु जब इसको ऊर्ध्वाधर धरातल में चलाया जाता है तो स्विच परिपथ^५ को तोड़ देता है।

चित्र ३० (क) में प्रवृत्तक योक्त्र दिखाया गया है। स्तम्भ से बहिरागामी एक साइफ़न-नली में टपकता रहता है और यह नली तुला की एक भुजा से जुड़ी रहती है। तुला की भुजा में सिंग्र लगे रहते हैं जिससे जब साइफ़न-नली

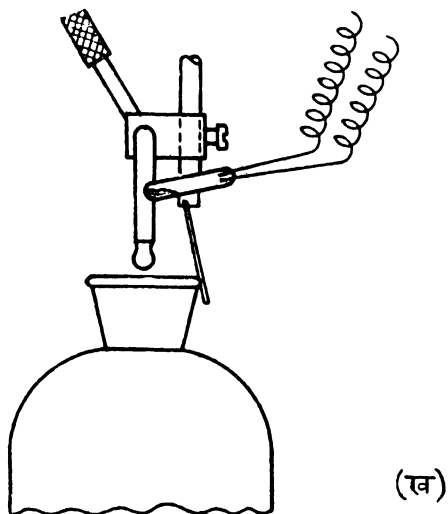
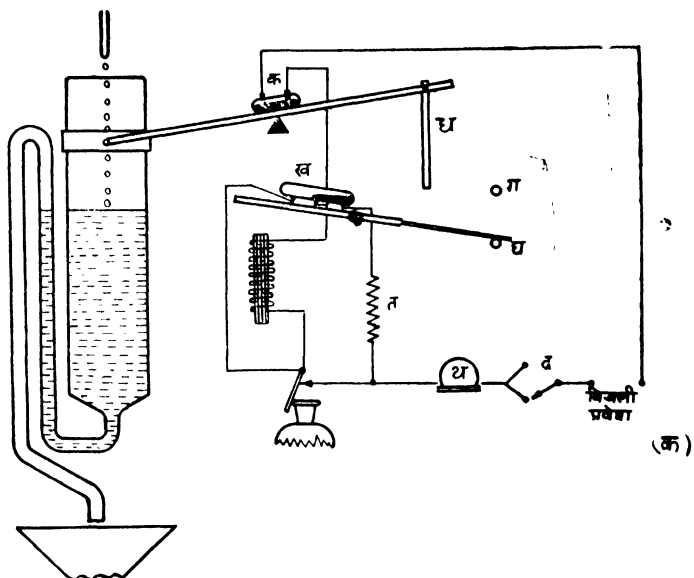
1. Spiral

2. Bridge

3. Actuating

4. Traversing arm

5. Circuit



चित्र ३० 'क', 'ख'—अंश-एकत्रक को चलाने का रेखाचित्र (देखिए—पठनीय सामग्री-उल्लेख सं० १०७, बिम्बे एवं स्तो के आधार पर)

आधी भर जाय तो तुला ठीक दशा में आ जाती है। तुला की भुजा पर पारे का एक स्विच (क) होता है और इसकी गति रुक-रुककर होती है (चित्र में इसे नहीं दिखाया गया है)। तुला की भुजा के नीचे एक सालीन्वायड^१ होता है और इसमें कीलकित धात्र^२ होता है, इसके साथ पारे का स्विच (ख) (दो रास्ते वाला) लगा होता है। सालीन्वायड में बहती धारा धात्र को नीचे खींच लेती है जिससे बायीं ओर के उपकरण स्पृष्ट होने लगते हैं। फिर से ठीक करनेवाला उत्तोलक^३ (घ) धात्र को दबा देता है जिससे दायीं ओर के उपकरण स्पृष्ट होने लगते हैं। चित्र में प्रतिरोधक (त) मोटर एवं रिडक्शन योक्त्र (थ) और पलटनेवाला स्विच (द) भी दिखाये गये हैं।

प्रयोग में, उपकरण का एक चक्कर तब आरम्भ होता है जब एक बोतल बिल्कुल भर चुकी हो। भरी हुई बोतल के मुँह पर पेंच ठहरा हुआ होगा और पेंच से जुड़ा स्विच खुला होगा (देखिए चित्र ३० ख)। खाली साइफ़न-नली अपनी उच्च अवस्था में होगी और स्विच (क) भी खुला होगा। जब तक साइफ़न-नली आधी नहीं भर जाती तब तक कोई प्रक्रिया नहीं होती। किन्तु आधी भरने पर, स्विच (क) बन्द हो जाता है और मोटर चलने लगता है, क्योंकि प्रतिरोधक^४ (त) और स्विच (ख) के दायें हाथ से धारा प्रवाहित होने लगती है। यह अवस्था चित्र में दिखायी गयी है। जब पेंच बोतल के ऊपर आ जाता है और दूसरी तरफ सफ़ाई से गिरता है तो पेंच से भी परिपथ बन जाता है। इससे स्विच (ख) झुक जाता है और मोटर चलता रहता है। अब धारा स्विच (ख) की दायीं ओर भी चलती रहती है और पेंच का स्विच श्रेणी में आ जाता है। उपकरण में यह प्रक्रिया तब तक होती रहती है जब तक पेंच दूसरी बोतल तक नहीं पहुँच जाता। साइफ़न-नली भी बराबर भरती रहती है और इसका द्रव पहले कीप में आता है, बाद में बोतल में। जब साइफ़न-नली खाली होती है तो तुला की भुजा फिर से ऊपर उठती है और ऐसा होने पर फिर से ठीक करनेवाला उत्तोलक (घ) स्विच (ख) को ठीक से लगा देता है। इस प्रकार एक चक्कर पूरा हो जाता है।

सालीन्वायड और धात्र^५ (वस्तुतः एक पुराना बाल सुखानेवाला मोटर)

- | | | |
|---------------|---------------------|--------------------|
| 1. Solenoid | 2. Pivoted armature | 3. Resetting lever |
| 4. Resistance | 5. Armature | |

अच्छे होने चाहिए, क्योंकि ये तभी काम करते हैं जब प्रतिरोधक (त) में बोल्ट का अन्तर पड़े और मोटर चलता रहे।

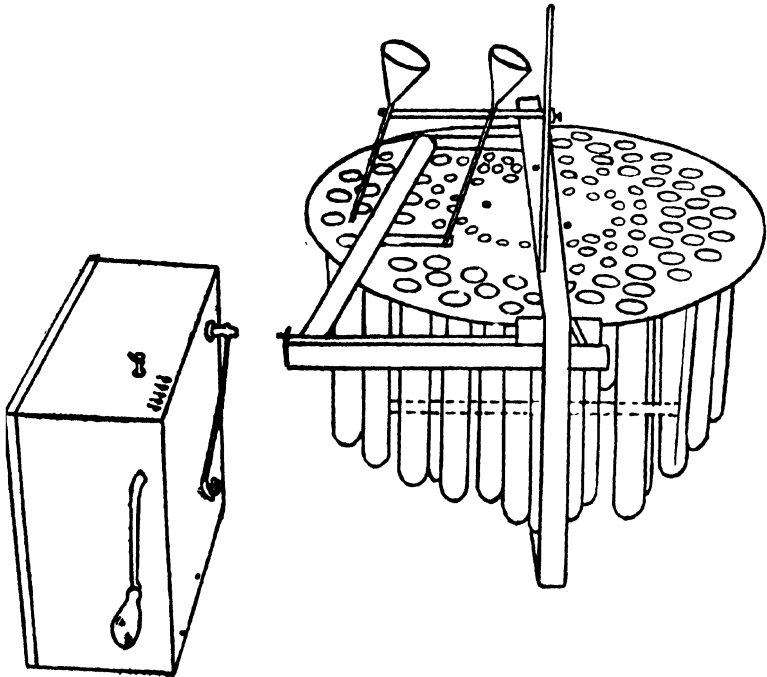
समय पर आधारित अंश-एकत्रक

समय पर आधारित अंश-एकत्रक विभिन्न आयतन के अंश के हो सकते हैं, क्योंकि प्रयोग चलते समय द्रव-प्रवाह की गति में अन्तर पड़ सकता है। यद्यपि यह एक बड़ी कमी दिखाई पड़ती है, तथापि यह उतनी गम्भीर नहीं है। यदि अंश की निश्चित मात्रा का परिमाणात्मक परिमाण करना हो तो यह समस्या गम्भीर है। निष्कासन के प्रयोगों में, विभाजन अथवा प्रतिरोधित^१ आयन-विनियम-स्तम्भों की भाँति, द्रव के प्रवाह की गति में बहुत थोड़ा अन्तर पड़ता है और प्रायः एक पट्टी को निकालने वाले अंश के नियत आयतन का अनुमान किया जा सकता है। विस्थापन क्रोमेटोग्राफी में, अंश का नियत आयतन इतना आवश्यक नहीं है।

समय पर आधारित अंश-एकत्रकों में कई अच्छाइयाँ होती हैं—अंशों के आयतन को काफ़ी घटाया या बढ़ाया जा सकता है, अंशों को एक ही मशीन से एकत्र किया जा सकता है और उपकरण सावधानी से बन जाता है। साधारणतया, गोलाकार डिस्क की परिधि पर धारक गोलाई से लगे होते हैं और यह डिस्क वैद्युत मोटर, अथवा घड़ी या चरखी और भार द्वारा समय-समय पर झटका खाकर घूमती रहती है। समय निर्धारित करने के लिए या तो वैद्युत समय-स्विच^२ होता है अथवा घड़ी की भाँति का कोई यंत्र होता है। इसकी कई डिज़ाइनें बनायी गयी हैं पर चित्र ३१ में दिखाया गया उपकरण सरलतम (१०५) है। उपकरण का चित्र ऊपर से बनाया गया है। डिस्क २० इंच व्यास की होती है और इसमें १४४ छेद होते हैं। इनमें से ७२ छेदों में $5 \times \frac{1}{8}$ इंच की परख-नलियाँ आ जाती हैं; इन नलियों में १५ मिलीलीटर द्रव रहता है। शेष ७२ छेदों में $2 \times \frac{1}{8}$ इंच की परख-नलियाँ आती हैं और इनमें ९० मिलीलीटर तक द्रव आ जाता है।

छेदों के ये दोनों सेट सर्पिल आकार में रहते हैं। बायीं ओर जो बक्स दिखाया

गया है उसमें ग्रामोफोन का एक स्प्रिंग-मोटर और एक घड़ी है। डिस्क का घूर्णन चली हुई ईषा^१ द्वारा ग्रामोफोन के मोटर से होता है, ईषा सीसे के पेंच की सीध में रहती है और वह पेंच को भी चलाती है। सीसे के पेंच के सिरे पर एक पुट्टा^२ लगा होता है और यह डिस्क को 15° घुमा देता है। डिस्क में 24



चित्र ३१—अंश-एकत्रक (स्नो के आधार पर)

खाइयाँ होती हैं। इस प्रकार, प्रत्येक झटके से डिस्क एक खाई के बाद दूसरी खाई पर आ जाती है। सीसे के पेंच के एक बार घूमने पर अर्ध-ढिबरी^१ भी $1/10$ इंच हट जाती है, जिससे नली के मध्य में द्रव भरनेवाली नली आ जाती है।

ग्रामोफोन-मोटर से चली हुई ईषा द्वारा एक किरणीय भुजा जुड़ी होती है और इसके बीच में रुक-रुककर होनेवाली क्रिया होती है। किरणीय भुजा में उसकी बाहरी ओर इस्पात-नली का एक छोटा चाप लगा होता है और इस चाप में ६ पिनें लगी होती हैं। पिनों को निकाला जा सकता है। एक एक करके ये पिनें ईषा के सिरे पर जुड़े घरे (निकलने-वाले) के अन्दर और बाहर जाती हैं।

ईषा एक घड़ी से लगी होती है और यह हर ५ मिनट में एक बार घूम जाती है। इस उपकरण की कार्यवाही ५, १०, १५, २०, २५ अथवा ३० मिनटों के अन्तर पर की जा सकती है।

छेदों की सर्पिल व्यवस्था से उपकरण काफी छोटा रहता है और इसको लगाने में कोई विशेष कठिनाई नहीं होती।

अन्य सहायक उपकरण

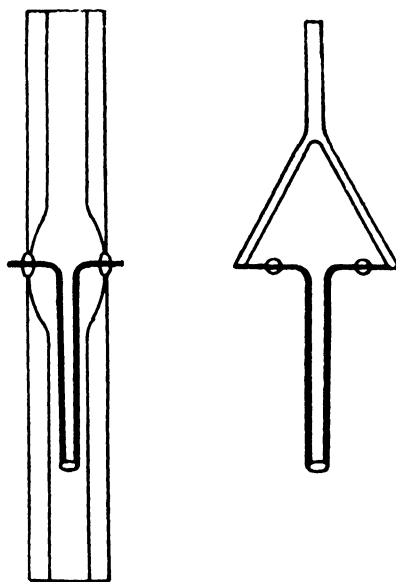
वैद्युत चालकता और pH की माप

कभी-कभी क्रोमेटोग्राफीय विधि में विलयनों के इन दो गुणों का मापन करना पड़ता है। पाट्रिज एवं वेस्टल (१६) ने एक सुगम व्यवस्था बतायी है जिसमें चालन विद्युद्ग्र और शीशे के विद्युद्ग्र पर्सपेक्स के डब्बे में बनाये गये। बहुत छोटे स्तम्भों के लिए, जहाँ मिश्रण न्यूनतम कर देना चाहिए, चित्र ३२ में दिखाये चालकता-सेल को स्तम्भ के निचले भाग में लगाया जा सकता है।

प्लैटिनम तार के एक इंच के दो (०.६५ मिलीमीटर व्यास वाले) टुकड़ों को झुकाकर "L" अक्षर के आकार का बना लिया गया। इनमें विद्युद्ग्र बनाये गये। इनके लम्बे सिरे नीले सीस-शीशे की एक घुंड़ी से जुड़े थे। शीशे की छड़ को पिघला और खींचकर "Y" के आकार का बना लिया गया। प्लैटिनम तारों के छोटे सिरों को "Y" की भुजाओं से जोड़ दिया गया। इससे एक अस्थायी अवलंबक बन गया, जिसको चित्र ३२ में दिखाया गया है। अब नीले सीस-

1. Escapement ring
2. Conduction electrodes
3. Lead-glass
4. Holder

शीशे की दो घुंडियाँ प्लैटिनम तारों के छोटे सिरों पर पिघलाकर जोड़ दी गयीं। जहाँ से ये तार शीशे में जुड़ते थे बिल्कुल वहीं पर ये घुंडियाँ भी थीं। प्लैटिनम



चित्र ३२—छोटा चालकता-सेल

तारों की लंबी भुजाएँ अब समानांतर होनी चाहिए और उनमें $1\frac{1}{2}$ मिलीमीटर का फासला होना चाहिए।

सेल का मुख्य भाग मोटी दीवार वाली केश-नलिका से बना होता है। इसके दो छोटे टुकड़े लीजिए। इनके सिरों को चौकोर बना लिया जाता है। विद्युदग्रों को “y” की लंबी भुजा से पकड़ा जाता है और एक केश-नलिका को गरम किया जाता है। तब विद्युदग्रों को केश-नलिका में लटकाया जाता है और घुंडियों को पिघलाकर तार के छोटे सिरों को केश-नलिका के चौकोर सिरों से चिपका दिया जाता है। तत्पश्चात् “y” के आकार के अवलंबक को तोड़ दिया जाता है और दूसरी केशनलिका को भी नीली घुंडियों के ऊपर जोड़ दिया जाता है। इस प्रकार जब केश-नलिकाएँ (चौकोर पर चौकोर) भली-भाँति जुड़ जाती है तो सेल तैयार हो जाता है। विद्युदग्रों पर काले प्लैटिनम की सतह चढ़ा ली जाती

है। ऐसा करने के लिए सेल पर रबर की छेपुनी चढ़ा ली जाती है और उससे सेल में प्लैटिनिक क्लोराइड का विलयन खींच लिया जाता है; तत्पश्चात् ध्रुवों को बदलकर कुछ समय के लिए उसमें साधारण विधि से धारा प्रवाहित की जाती है।

यहाँ पर दी गयी मापों के सेल से काम करने पर मापे गये प्रतिरोध को सापेक्ष प्रतिरोध जानने के लिए तीन से गुणा करना पड़ता है। अतः आवश्यकतानुसार सेल की मापों को घटाया जा सकता है।

जेम्स मार्टिन एवं रैन्डल (१०६) ने परिपथ का एक चित्र दिया है। इसमें दिखाया गया है कि चालकता में परिवर्तन के अंकन के लिए एक चालकता-सेल को किस प्रकार दुहरा^१ किया जा सकता है।

लासकाउस्की एवं पुट्शर (१०८) ने इसी भाँति एक पारविद्युत नियुत संवेदनशील “थर्मो कैप”^२ रिले का उपयोग पहचानने के लिए किया।

लवण-रहित करनेवाला उपकरण

यदि किसी विलयन को लवण-रहित करना है तो सबसे सरल उपाय यह है कि मोटे कागज पर उसके क्रोमैटोग्राम को चलाया जाय; और इसके पश्चात् लवण की पट्टी के अतिरिक्त सब पट्टियों का निष्कासन कर लिया जाय। किन्तु इस विधि से लवण-रहित विलयन की थोड़ी मात्रा ही तैयार हो पाती है।

कभी-कभी लवण को पृथक् आयनों में आयन-विनिमय स्तम्भों पर पृथक् करना पड़ता है और कभी-कभी आयन-रहित करनेवाले मिश्रित स्तम्भों पर चलाना पड़ता है, जैसा जीवों से प्राप्त विलयनों में किया जाता है।

तीसरी विद्युद्-विश्लेषण की विधि है। इसको कान्सडेन, गार्डन एवं मार्टिन (१०९) ने निकाला। लवणरहित किये जानेवाले द्रव को पारे पर तैरा दिया जाता है और पारा लोह के ऋणाग्र से जुड़ा होता है। धनाग्र शीशे की चौड़ी नली के लम्बे टुकड़े को सेलोफेन झिल्ली से नीचे की ओर सील करके बनाया जाता है। धनाग्र के मुख्य भाग को ०.१ नार्मल सल्फ्यूरिक अम्ल के विलयन में डुबो दिया जाता है। तीव्र विद्युद्-विश्लेष्य^३ झिल्ली से बाहर निकल आते हैं, किन्तु हलके अम्ल और बिना किसी चार्ज के अणु बाहर नहीं निकल पाते; यदि निकलते

1. Coupled 2. Dielectric constant sensitive “Thermocap” relay
3. Strong electrolytes

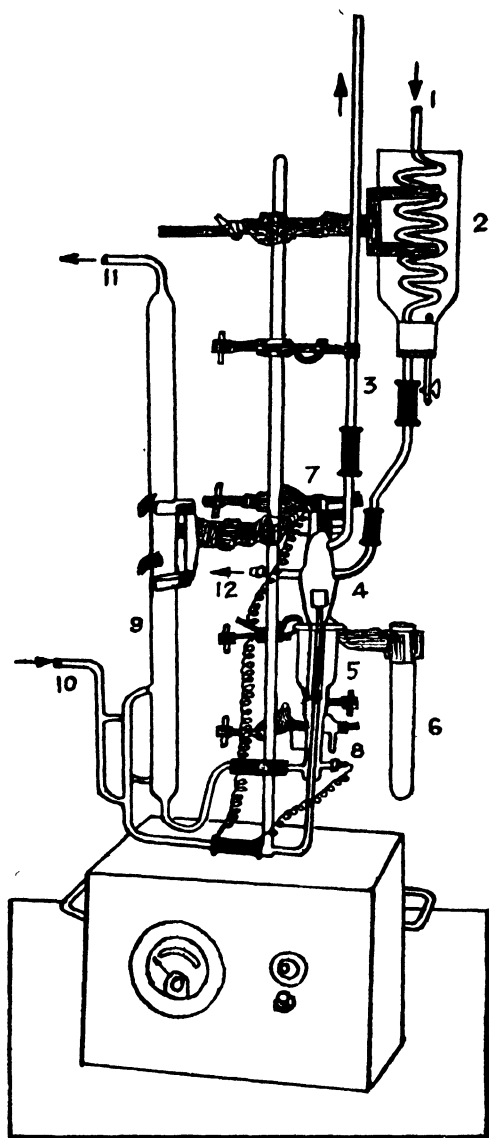
भी हैं तो बहुत ही सूक्ष्म मात्रा में। पारे से हाइड्रोजन आयन और अकार्बनिक धनायन चार्ज-रहित हो जाते हैं। यह क्रम बराबर चलता रहता है, पारे में घुले द्रव्य जल की धारा में बहकर निकल जाते हैं और नल की धारा पारे पर बराबर चलती रहती है।

चित्र ३३ में जो उपकरण दिखाया गया है, वह शैन्डन साइंटिफिक कम्पनी (6 Cromwell Place, London, S. W. 7) का है। यह डेन्ट द्वारा कान्सेडन, गार्डन और मार्टिन के यंत्र के परिवर्धन पर आधारित है। चित्र में दिये हुए नम्बरों पर ध्यान दीजिए। जल (१०) से प्रवेश करता है। प्रवाह की गति इतनी रखी जाती है कि पारा, नली (९) में जल की धारा के साथ चला जाय; जल नली (११) से निकलकर बेकार चला जाता है।

विद्युद्-विश्लेषण विभाग (५) में नीचे की ओर और नली (९) के निचले सिरे पर लगभग ५० मिलिलीटर पारा रहता है। जब पारा चलता रहता है तो इसकी सतह विद्युद्-विश्लेषण विभाग की अंदरूनी नली से लगभग ३ मिलीमीटर ऊपर होती है। धनाग्र पात्र (४) में नली (१) से तनु सल्फ्यूरिक अम्ल आता है। ठंडा करनेवाला पात्र (२) है और अम्ल-नली (१२) से खाली की जाती है। नली (३) में गैस रहती है, (७) और (८) विद्युत् के प्रवेश एवं निकास द्वार हैं। इस उपकरण में १ से १० मिलिलीटर तक द्रवों को लवण-रहित किया जा सकता है।

अंमापी' को देखते रहने पर लवण-रहित होनेवाली प्रक्रिया का परीक्षण किया जा सकता है; जैसे-जैसे आयन हटते जाते हैं, वैसे-वैसे धारा-प्रवाह भी कम हो जाता है।

कान्सेडन, गार्डन एवं मार्टिन ने अपने मौलिक उपकरण से कई प्रयोग किये। आपने कई अमीनो-अम्लों को अच्छी मात्रा में सोडियम हाइड्राक्साइड और सोडियम सल्फेट से पृथक् किया। स्टाइन एवं मूर (११०) ने ज्ञात किया कि कुछ अमीनो-अम्लों की मात्रा लवण-रहित होने की प्रक्रिया में कम हो जाती थी; आर्जीनीन तो काफ़ी मात्रा में नष्ट हो जाती थी। इसकी लगभग तीन-चौथाई मात्रा आर्नीथीन में परिवर्तित होती थी।



चित्र ३३—लवणरहित करनेवाला यन्त्र

परिशिष्ट (क)

विलायकों, फुहारों और सा साँमानों का विस्तृत विवेचन

स्वर्ण-समूह के तत्त्व (देखिए:—एम० लेडेरर, Nature, १६२, पृ० ७७६, १९४८)

धातुओं को अम्ल-राज^१ में घोला गया और तब उतने ही आयतन के जल से तनु कर लिया गया। नार्मल जलीय हाइड्रोक्लोरिक अम्ल से संतृप्त ब्यूटेनाल का विलायक के रूप में प्रयोग किया गया। केश-नलिका में चढ़ाव वाली विधि का उपयोग किया गया। द्रव के दो अग्रभाग बने—पहला जलरहित ब्यूटेनाल का था और दूसरा (गहरी सीमा के रूप में बिलकुल स्पष्ट) जलीय ब्यूटेनाल का था।

साँमान (जलीय अग्रभाग के अनुसार)—

रजत	०.०
ताम्र	०.१
पैलेडियम	०.६
प्लैटिनम	०.७२—०.८०
स्वर्ण	१.०५—१.१३

रजत और प्लैटिनम के धब्बे पीले थे और प्लैटिनम के नारंगी रंग के। अमोनिया के ऊपर क्रोमेटोग्राम का प्रस्फुटन किया गया और तब हाइड्रोजन सल्फाइड से स्वर्ण और पैलेडियम के गहरे भूरे धब्बे, तथा रजत और ताम्र के काले धब्बे प्राप्त किये गये। स्वर्ण ने कलिलीय^३ स्वर्ण की रेखा भी बनायी।

अन्य धातुएँ (देखिए—टी० वी० आर्डेन, एफ० एच० बर्स्टेल, जे० ए० लीविस एवं आर० पी० लिनस्टेड, Nature १६२. पृ० ६९१. १९४८)

कोई भी सा अमान नहीं दिये गये हैं। दावा किया गया है कि इस विधि द्वारा ०.१—१.० माइक्रो-धातुओं तक की पहचान कर ली जा सकती है। प्रयोग में साधारण रूप से ५ माइक्रो-मात्राएँ ही ली गयीं।

कैलसियम, स्ट्रोंशियम और बेरियम—इनकी क्लोराइड ली गयी और विलायक के रूप में ४ प्रतिशत पिरिडीन-पोटाशियम थायोसायेनेट लिया गया। सोडियम र्होडीजोनेट से बेरियम और स्ट्रोंशियम का प्रस्फुटन किया गया, तथा ऐलीजरीन से कैलसियम का।

एल्यूमिनियम, गैलियम, इण्डियम और जस्ता—इनकी भी क्लोराइड ली गयी और हाइड्रोक्लोरिक अम्ल से युक्त ब्यूटेनॉल में इनको प्रस्फुटित किया गया। “एल्यूमिनान” एल्यूमिनियम एवं गैलियम को प्रस्फुटित करता है; “डाइथाइजोन” इण्डियम को।

वैनेडियम—डाइएथिल ईथर अथवा टेट्राहाइड्रोसिल्वेन (२-मेथिल टेट्रा-हाइड्रो फ्यूरेन) में थोड़ा नाइट्रिक अम्ल डाला गया और हाइड्रोजन पर आक्साइड की थोड़ी मात्रा मिलायी गयी; इसका विलायक रूप में प्रयोग किया गया। ८-हाइड्राक्सी क्वीनोलीन से इसका प्रस्फुटन करके हल्के गुलाबी रंग की पट्टी (पर आक्सी यौगिक) प्राप्त की गयी।

पारा—टेट्राहाइड्रोसिल्वेन या टेट्राहाइड्रोपायरान पारे को अन्य धातुओं की क्लोराइड से पृथक् करता है। डाइथाइजोन से इसका प्रस्फुटन किया जाता है।

कोबाल्ट, ताँबा, लोह, मैंगनीज एवं निकल—मेथिल नार्मल-प्रोपिल कीटोन में इनकी क्लोराइड ली गयी अथवा हाइड्रोक्लोरिक अम्ल युक्त ऐसीटोन में इनको लिया गया। (एक सुगम मिश्रण की रचना यह है—मेथिल नार्मल-प्रोपिल कीटोन ८० प्रतिशत, ऐसीटोन १० प्रतिशत एवं हाइड्रोक्लोरिक अम्ल १० प्रतिशत।)

निकल, कोबाल्ट एवं ताँबे को रुबियनिक अम्ल से पहचाना जाता है; मैंगनीज को अमोनिया युक्त रजत विलयन से; निकल एवं कोबाल्ट का परिमाणात्मक निर्धारण पोलैरोग्राम से किया गया।

एम० लेडरर (Nature, १६३, पृ० ५९८, १९४९) ने एक नार्मल हाइड्रोक्लोरिक अम्ल से संतृप्त ब्यूटेनॉल का उपयोग किया और निम्नलिखित सा अमान प्राप्त किये।

आयन	सा अ	आयन	सा अ
Ag ⁺	०.०	Hg ⁺⁺	१.०२-१.१०
Cu ⁺⁺	०.०८—०.१३	Pt ⁺⁺⁺	०.७२-०.८०
Cd ⁺⁺	०.५६—०.६५	Rh ⁺⁺⁺	०.०७
Bi ⁺⁺⁺	०.६१—०.६८	RuO ₄ -	०.१
Pb ⁺⁺	०.०	Ir ⁺⁺⁺⁺	०.७२-०.८
As ⁺⁺⁺	०.६७—०.७३	Au ⁺⁺⁺	१.०५-१.१३
Sb ⁺⁺⁺	०.८ लगभग*	Fe ⁺⁺⁺	०.१२
Sn ⁺⁺	०.९५—०.९९	Co ⁺⁺	०.०७
MoO ₄ ⁻	०.५—०.५३	Ni ⁺⁺	०.०७
UO ₂ ⁻	०.२	Mn ⁺⁺	०.०९
U ⁺⁺⁺⁺	०.०	Sr ⁺⁺	०.०
Pd ⁺⁺	०.६	Ba ⁺⁺	०.०

शर्कराएँ और संबंधित पदार्थ [एस० एम० पाट्रिज (११)]

जर्मिन एवं आइशरउड (१३) ने निम्नलिखित विलायकों से अधिक अच्छे पृथक्करण किये—

(क) एथिल ऐसीटेट—ऐसीटिक अम्ल—जल (आयतन अनुसार ३ : १ : ३), और

(ख) एथिल ऐसीटेट—पिरीडीन—जल (आयतन अनुसार २ : १ : २)।

इन विलायकों से निम्न सा अ मान आये; विलायक को कागज के अंत तक दौड़ाना चाहिए।

*विस्तार आवश्यक

शर्करा	विलायक क	विलायक ख	विलायक ग	विलायक घ
डी-अरैबिनोज	०.५४	०.४३	०.२१	०.२१
डी-डीआक्सीराइबोज	०.७३	०.६०	—	०.३२
एल-फ्रुक्टोज	०.६३	०.४४	०.२७	—
डी-फ्रक्टोज	०.५१	०.४२	०.२३	०.१८
डी-गैलेक्टोज	०.४४	०.३४	०.१६	०.१४
डी-ग्लूकोज	०.३९	०.३९	०.१८	०.१३
लैक्टोज	०.३८	०.२४	०.०९	०.०७
माल्टोज	०.३६	०.३२	०.११	०.०८५
डी-मैनोज	०.४५	०.४६	०.२०	०.१५
रैफ़ीनोज	०.२७	०.२०	०.०५	—
एल-रैमनोज	०.५९	०.५९	०.३७	०.३०
डी-राइबोज	०.५९	०.५६	०.३१	०.२२
एल-सारबोज	०.४२	०.४०	०.२०	०.१६
सुक्रोज	०.३९	०.४०	०.१४	—
डी-जाइलोज	०.४४	०.५०	०.२८	०.१९
डी-गैलेक्टुरानिक अम्ल	०.१३	०.१४	०.१४	०.०९
डी-ग्लूकुरानिक अम्ल	०.१२	०.१६	०.१२	०.०८
		(०.७२)*	(०.३२)*	(०.२२)*
डी-ग्लूकुरोन	०.१२	—	—	—
		(०.७२)*	(०.३३)*	(०.२२)*
डी-ग्लूकोसमामीन	०.६२	०.३२	०.१३	०.०५
हाइड्रोक्लोराइड			(०.१७)†	(०.२०)†
काइसामीन हाइड्रो-क्लोराइड	०.६५	०.२८	०.१२	—
			(०.१६)†	(०.१९)†
नार्मल-ऐसीटिल ग्लूको-जामीन	०.६९	०.५०	०.२६	०.२५
एल-ऐमकार्बिक अम्ल	०.२४	०.४२	०.३८	०.१९
डिहाइड्रो-ऐसकार्बिक अम्ल	०.१६	०.६८	०.२७	०.१६
इनोसिटाल	०.२३	०.१०	०.०९	—

विलायक क—फ़ीनोल-अमोनिया (भार/आयतन १ प्रतिशत), हाइड्रोजन सायेनाइड के साथ।

विलायक ख—एस—कालीडीन

विलायक ग—नार्मल ब्यूटेनाल—ऐसीटिक अम्ल—जल ४०-१०-५० (आयतन के अनुसार)

विलायक घ—आइसोब्यूटिरिक अम्ल।

*लैकटोन के कारण

† स्वतंत्र भस्म के कारण, ये धब्बे जुड़े हुए थे।

पार्ट्रिज तथा जर्मिन एवं आइशरउड ने पार्ट्रिज के फव्वारे (फुहार) का उपयोग किया। (विलयन क में नैफ़थोसासिनाल था—भार/आयतन ०.२ प्रतिशत; विलयन ख जल में ट्राइक्लोर ऐसीटिक अम्ल था—भार/आयतन २ प्रतिशत। इन विलयनों के बराबर आयतन को प्रयोग के पहले मिला लिया गया।) फुहार छोड़ने के बाद क्रोमैटोग्राम को आंशिक रूप से साधारण ताप पर सूखने दिया गया। तब उसे १००-१०५° श पर ५-१० मिनट तक ऊष्मक में सुखाया गया। फ्रक्टोज, सारबोज, सुक्रोज एवं रैफ़ीनोज ने गहरे लाल रंग के धब्बे दिये; ये कम से कम १२ घंटे तक स्थायी रहते हैं। कीटोजों के लिए प्रतिक्रिया में चयन-शीलता^१ थी। अन्य शर्कराओं ने १००° श पर रंग के केवल सूक्ष्म धब्बे बनाये। यदि खुली हवा में इस क्रोमैटोग्राम को थोड़ी देर तक रख दिया जाय तो पेंटोज और यूरोनिक अम्ल गहरे नीले रंग के धब्बे बनाते हैं। ७०-८०° ताप पर और नम वायु में नीले धब्बे १०-१५ मिनट में बनते हैं; इस दशा में कीटोज नारंगी भूरे रंग के थे। हेक्सोजामिन एवं नार्मल ऐसीटिल हेक्सोजामिन एल्सन एवं मार्गन (१९३३) के आविष्कृत प्रतिकर्मक से प्रस्फुटित किये गये।

पार्ट्रिज ने शर्कराओं के लिए अच्छे फव्वारे (फुहार) को ज्ञात किया (Nature १६४, पृ० ४४३, १९४९)। यह प्रतिकर्मक इस प्रकार बनाया जाता है—ऐनीलीन (०.९३ ग्राम) और थैलिक अम्ल (१.६० ग्राम) को जल-संतृप्त ब्यूटेनाल (१०० मिलीलीटर) में डाला जाता है। फव्वारे के बाद क्रोमैटोग्राम को १०५° श पर गरम किया जाता है जिससे रंग बन जायँ। ऐल्डो-पेंटोज चमकीले

लाल रंग के धब्बे बनाते हैं, ऐल्डो-हेक्सोज, डेस-आक्सी शर्कराएँ और यूरोनिक हरे एवं भूरे रंग के कई हलके धब्बे बनाते हैं। कीटोजों का प्रस्फुटन संतोषजनक रूप से नहीं होता।

पार्टिज ने भी अवकारक शर्कराओं के पहचानने के लिए अमोनिया-युक्त सिल्वर नाइट्रेट के विलयन का उपयोग किया, यद्यपि इस प्रतिकर्मक की विशिष्ट प्रतिक्रिया नहीं होती।

वसीय अम्ल (एफ़ ब्राउन, Biochem. J. ४७, पृ० ५९८, १९५०)

अम्ल	विलायक क	विलायक ख	विलायक ग
फ़ार्मेट	०.०९	०.०८	०.१४
ऐसीटेट	०.१०	०.०९	०.१६
प्रोपियोनेट	०.१९	०.१८	०.२६
नार्मल-ब्यूटिरेट	०.३३	०.३०	०.३९
आइसो-ब्यूटिरेट	०.३१	०.२८	०.३७
नार्मल-वैलीरेट	०.४५	०.४१	०.५८
आइसो-वैलीरेट	०.३९	०.३६	०.५५
नार्मल-कैप्रोएट	०.६१	०.५५	०.७१
आइसो-कैप्रोएट	०.६०	०.५४	०.६९
नार्मल-आक्टोनेट	०.७४	०.६९	०.८०

विलायक क—नार्मल ब्यूटेनाल, १.५ नार्मल जलीय अमोनिया ५०/५०, आयतन/आयतन।

विलायक ख—नार्मल ब्यूटेनाल, ३.० नार्मल जलीय अमोनिया-५०/५०, आयतन/आयतन।

विलायक ग—नार्मल-ब्यूटेनाल। एथेनाल। ३.० नार्मल जलीय अमोनिया—४०/१०/५० आयतन/आयतन।

वाष्पशीलता के कारण इनके सोडियम लवण लिये गये।

फव्वारे में ०.०४ प्रतिशत ब्रोमोथाइमोल ब्लू का विलयन था, सोडियम हाइड्रक्साइड से इसका pH ७.५ कर लिया गया था।

कीटो अम्ल (डी० कैवेलीनी, एन० फ्रानटेली एवं जी० टोशी, Nature, १६३, पृ० ५६८, १९४९)

अम्लों को २, ४—डाइनाइट्रो फ़ेनिल हाइड्रेजनों में परिवर्तित कर लिया गया—इनको ०.०१ मोलर फ़ास्फ़ेट प्रतिरोध pH ७.२ में घोला गया, सांद्रण २५४/०.१ मिलिलीटर रखा गया। चूंकि ये यौगिक रंगीन थे, अतः इनमें फव्वारे की आवश्यकता नहीं पड़ी। परिमाणात्मक परख करने से ज्ञात हुआ कि औसतन ९१ प्रतिशत यौगिकों की प्राप्ति होती है।

अम्ल	विलायक क	विलायक ख	विलायक ग
एल्फ़ा-कीटोग्लूटारिक	०.०७	०.०५	०.२६
आक्सेलो ऐसीटिक	०.१३	०.१२	०.२८
ग्लाइकॉक्सिलिक	०.१७	०.२४	०.३२
पिरूविक	०.२१	०.३५	०.३६
ऐसीटोऐसीटिक	०.२६	०.४०	०.४३
एल्फ़ा कीटो-गामा मेथायो ब्यूटिरिक	०.४३	०.६२	०.५५
एल्फ़ा-कीटोब्यूटिरिक	०.४३	०.६५	०.५३
पैरा-हाइड्रॉक्सी फ़ेनिल पिरूविक	०.६०	०.६४	०.५५
फ़िनाइल पिरूविक	०.५९	०.८०	०.६६

विलायक क—ब्यूटेनाल।

विलायक ख—३ प्रतिशत अमोनिया (आयतन / आयतन) से संतृप्त ब्यूटेनाल।

विलायक ग—ब्यूटेनाल, एथेनाल, जल—५० : १० : ४० आयतन/आयतन।

अमोनो-अम्ल—विलियम्स एवं कर्बी (१२) ने कुछ मान दिये हैं; कान्सडेन गार्डन एवं मार्टिन ने भी अपनी “केश-नली-चढ़ाव” विधि से इन मानों की तुलना की है।

अमीनो-म्ल	फ्रीनोल + N H 3	जल	कालीडिन		नार्मल ब्यूटेनल + N H ₃ (3%)		आइसो ब्यूटिरिक अम्ल	
			१	२	१	२	१	२
फिनाइल-ऐलानीन	०.८६-०.९०	०.८३	—	—	—	—	—	—
प्रोलीन	०.८५-०.९१	०.८८	०.३५	०.३४	०.१४	०.०८	०.५७	०.५५
सीरीन	०.३३-०.३६	०.३०	०.२८	०.३०	०.०५	०.०४	०.३४	०.३२
थ्रियोनीन	०.४१-०.५०	०.४३	०.३२	०.३२	०.०८	०.०५	०.४३	०.४१
ट्रिप्टोफ़ेन	०.७६-०.८६	०.७१	०.६२	०.५९	—	०.२०	—	०.६३
टायरोसीन	०.५९-०.६४	०.५५	०.६४	०.५९	०.१४	०.१४	०.५८	०.४७

१ विलयम्स एवं कर्वी (१२) । २—कान्सडेन और उनके साथी ।

दूसरे अध्याय में निनहाइड्रिन फव्वारे (फुहार) का विस्तृत वर्णन किया गया है । निनहाइड्रिन प्रतिक्रिया की तुलना में एक और अधिक अच्छी विधि है—यह ऐसीटिल युक्त अमीनो-अम्लों, पेप्टाइडों, डाइकीटोपिपराजीन एवं प्रोटीनों के लिए उपयुक्त है । इसका वर्णन एच० एन० राइडन एवं पी० डब्लू० जी० स्मिथ ने किया है—देखिए Nature, १६९, पृ० १२२, १९५२ । विलायक चलाने और सुखाने के बाद, क्रोमैटोग्राम को शुष्क क्लोरीन में दस मिनट के लिए रखा जाता है । तब आधे घंटे के लिए उसे साधारण ताप पर हवा में रहने दिया जाता है; तत्पश्चात् उस पर १ प्रतिशत पोटाशियम आयोडाइड एवं १ प्रतिशत स्टार्च के विलयन से फुहार डाली जाती है ।

ए० आर० केम्बल एवं एच० टी० मैकफर्गन (Nature, १७०, पृ० ८४, १९५२) ने एक ऐसे फव्वारे का वर्णन किया है जो बाद में विश्लेषण से हस्तक्षेप नहीं करता । इसकी रचना यह है—३ मिलीलीटर फ़ॉर्मलीन, ०.१ मिलीलीटर ६० प्रतिशत जलीय पोटाशियम हाइड्रॉक्साइड; ये २० मिलीलीटर ०.१५ प्रतिशत (भार/आयतन) क्रोमोथाइमोल ब्लू में जो ९५ प्रतिशत ऐलकोहल में घुला होता है, डाले जाते हैं ।

पदार्थ	व्युटीनाल + ऐसीटिक अम्ल + जल ४०-१०-५० आयतन/आयतन	मेटाक्रीसोल + ऐसीटिक अम्ल + जल ५०-२-४८ आयतन/आयतन	फव्वारा अमोनिया युक्त सिल्वर नाइट्रेट	फ्रैरिक क्लोराइड
बेंजोइक अम्ल	०.९२	०.९३	—	—
कैटीकाल	०.९१	०.७४	+	काला
सिनामिक अम्ल	०.९४	०.९२	—	पीला
आर्थो कुमरिक अम्ल	०.९४	०.८२	+	नारंगी
गैलिक अम्ल	०.६८	०.०८	+	गहरा भूरा जस्ते के रंग का
मेटा हाइड्राक्सी बेंजोइक	०.९१	०.७२	—	हल्का पीला
पैरा हाइड्राक्सी बेंजोइक	०.९०	०.७२	—	गहरा पीला
आसीनाल	०.९१	०.७५	÷	जस्तई रंग
फ्लोरो ग्लूसीनाल	०.७६	०.१६	+	जस्तई रंग
फ्लोरो ग्लूसीनाल कार्बोक्सिलिक अम्ल	०.५५	०.०६	—	जस्तई रंग
प्रोटो कैटी चूइक अम्ल	०.८५	०.३५	+	काही
पायरोगैलाल	०.७७	०.३८	+	लाली लिये भूरा
क्वीनाल	०.८८	०.६९	+	जस्तई
रिसासीनाल	०.९१	०.६३	+	जस्तई
बोटा-रिसासिलिक अम्ल	०.९३	०.५४	—	बैजनी
सैलीसिलिक अम्ल	०.९५	०.८४	—	बैजनी
वैनीलिक अम्ल	०.९२	०.८१	—	चमड़े का रंग

तालिका संबंधी टिप्पणियाँ

१. अमोनिया-युक्त सिल्वर नाइट्रेट—०.१ नार्मल सिल्वर नाइट्रेट और ५ नार्मल अमोनिया के बराबर आयतनों को मिलाइए।

२. फेरिक क्लोराइड—२ प्रतिशत जलीय।

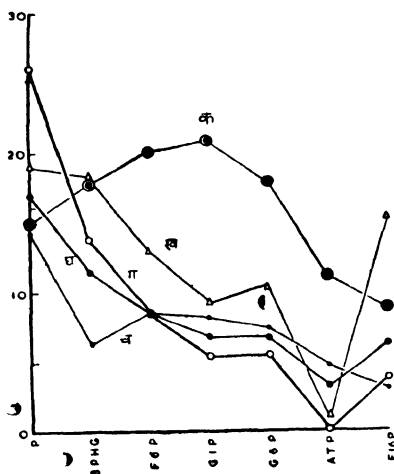
३. घबबों की उपस्थिति जानने के लिए बैजनी—अतीत प्रकाश का भी उपयोग किया जाता है।

४. कई फ्लैवोनो और ऐन्थोसायैनिनों के भी साअ मान इस शोध-निबंध में दिये हुए हैं।

फ़ास्फ़ोरिक एस्टर [हानेस एवं आइशरउड (१४)]

इन वैज्ञानिकों ने तीन विलायकों के मिश्रण का उपयोग किया। साधारणतया विलायक को कागज़ के सिरे तक चलाया गया। प्रत्येक क्रोमैटोग्राफ़ीय पतली स्ट्रिप के सिरे पर छनने कागज़ की गद्दी रहती थी, जिसमें विलायक सोखता रहता था। इनके शोध-निबंध में से चित्र ३४ को लिया गया है। साअ मानों के स्थान पर पदार्थों के चलने की वास्तविक दूरी दी गयी है, क्योंकि इन विलयशीलों एवं विलायकों के साअ मान काफ़ी निम्न थे।

ये वैज्ञानिक (क) वर्ग के विलायकों का उपयोग करके कई कार्बनिक अम्लों (वंसीय, हाइड्राक्सी, डाइ एवं-ट्राइ कार्बाक्सिलिक) को भी पृथक् करने में सफल हुए।



चित्र ३४—कागज-क्रोमेटोग्राम पर शर्करा-फास्फोरिक एस्टरों की गति (देखिए—पठनीय सामग्री-उल्लेख सं० १४, हानेस एवं आइशरउड के आधार पर)

P—अकार्बनिक फास्फेट

3 PHG—फास्फोग्लिसरिक अम्ल

F 6 P—फ्रक्टोज - ६ - फास्फेट

G 1 P—ग्लूकोज - १ - फास्फेट

G 6 P—ग्लूकोज - ६ - फास्फेट

A T P—ऐडोनीसीन ट्राई फास्फेट

F 1, 6 P—फ्रक्टोज १ - ६ फास्फेट

पठनीय सामग्री-उल्लेख

REFERENCES

- ¹ FARRADANE, J., *Nature*, **167**, 120, 1951.
- ² KUHN, E., WINTERSTEIN, A., and LEDERER, E., *Zeit. Physiol. Chem.*, **197**, 141, 1931.
- ³ WEIL, H., and WILLIAMS, T. I., *Nature*, **166**, 1000, 1950.
- ⁴ MARTIN, A. J. P., and SYNGE, R. M. L., *Biochem. J.*, **35**, 1358, 1941.
- ⁵ MOORE, S., and STEIN, W. H., *J. Biol. Chem.*, **178**, 53, 1949.
- ⁶ PARTRIDGE, S. M., and SWAIN, T., *Nature*, **166**, 272, 1950.
- ⁷ CONSDEN, R., GORDON, A. H., and MARTIN, A. J. P., *Biochem. J.*, **38**, 224, 1944.
- ⁸ MARTIN, A. J. P., *Ann. Review of Bioch.*, **XIX**, 518, 1950.
- ⁹ PHILLIPS, C. S. G., *Faraday Soc. Discuss., Chromatography* No. 7, 241, Gurney and Jackson, London, 1949.
- ¹⁰ ZECHMEISTER, L., *Progress in Chromatography*, 1938-1947, Chapman and Hall, London, 1950.
- ¹¹ PARTRIDGE, S. M., *Biochem. J.*, **42**, 238, 1948.
- ¹² WILLIAMS, J., and KIRBY, H., *Science*, **107**, 481, 1948.
- ¹³ JERMYN, M. A., and ISHERWOOD, F. A., *Biochem. J.*, **44**, 402, 1949.
- ¹⁴ HANES, C. S., and ISHERWOOD, F. A., *Nature*, **164**, 1107, 1949.
- ¹⁵ DATTA, S. P., DENT, C. E., and HARRIS, H., *Biochem. J.*, **46**, xlii, 1950.
- ¹⁶ BALSTON, J. N., and TALBOT, B. E., *A Guide to Filter Paper and Cellulose Powder Chromatography*, edited T. S. G. Jones. H. Reeve Angel and Co., Ltd., London, 1952.
- ¹⁷ LANDAU, A. J., FUERST, R., and AWAPARA, J., *Anal. Chem.*, **23**, 162, 1951.
- ¹⁸ MCFARREN, E. F., *Anal. Chem.*, **23**, 168, 1951.
- ¹⁹ NOVELLIE, L., *Nature*, **166**, 1000, 1950.
- ²⁰ FISHER, R. B., PARSONS, D. S., and MORRISON, G. A., *Nature*, **161**, 764, 1948.
- ²¹ BRIMLEY, R. C., *Nature*, **163**, 215, 1949.
- ²² FROMAGEOT, C., and DE GARILHE, M. P., *Biochim. et Biophysica Acta*, **4**, 509, 1950.
- ²³ BULL, H. B., HAHN, J. W., and BAPTIST, V. R., *J. Amer. Chem. Soc.*, **71**, 550, 1949.

- 24 THOMPSON, J. F., ZACHARIUS, R. M., and STEWARD, F. C., *Plant Physiol.*, **26**, 375, 1951.
- 25 THOMPSON, J. F., and STEWARD, F. C., *Plant Physiol.*, **26**, 421, 1951.
- 26 BLOCK, R. J., *Anal. Chem.*, **22**, 1327, 1950.
- 27 MCFARREN, E. F., BRAND, K., and RUTKOWSKI, H. R., *Anal. Chem.*, **23**, 1146, 1951.
- 28 ISHERWOOD, F. A., and HANES, C. S., *Biochem. J.*, **55**, 824, 1953.
- 29 HAWTHORNE, J. R., *Nature*, **160**, 714, 1947.
- 30 DENT, C. E., *Biochem. J.*, **43**, 169, 1948.
- 31 CRUMPLER, H. R., and DENT, C. E., *Nature*, **164**, 441, 1949.
- 32 CRUMPLER, H. R., DENT, C. E., HARRIS, H., and WESTALL, R. G., *Nature*, **167**, 307, 1951.
- 33 HANES, C. S., HIRD, F. J. R., and ISHERWOOD, F. A., *Nature*, **166**, 288, 1950.
- 34 ALBON, N., and GROSS, D., *Analyst.*, **75**, 454, 1950.
- 35 DE WHALLEY, H. C. S., ALBON, N., and GROSS, D., *Analyst.*, **76**, 287, 1951.
- 36 BARTLETT, J. K., HOUGH, L., and JONES, J. K. N., *Chem. and Ind. No. 4*, p. 76, Jan. 27th 1951.
- 37 BOURSNELL, J. C., *Nature*, **165**, 399, 1950.
- 38 GLISTER, G. A., and GRAINGER, A., *Analyst.*, **75**, 310, 1950.
- 39 MARTIN, A. J. P., *Symposia Boich. Soc.*, **3**, 4, 1949.
- 40 BATE-SMITH, E. C., and WESTALL, R. G., *Biochim. et Biophysica Acta.*, **4**, 427, 1950.
- 41 KNIGHT, C. A., *J. Biol. Chem.*, **190**, 753, 1951.
- 42 PARDEE, A. B., *J. Biol. Chem.*, **190**, 757, 1951.
- 43 ISHERWOOD, F. A., and JERMYN, M. A., *Biochem. J.*, **48**, 515, 1951.
- 44 STRAIN, H. H., *Leaf Xanthophylls.*, Carnegie Inst. Washington, D. C. 1938.
- 45 SCHWAB, G. M., *Faraday Soc. Disc., Chromatography*, No. 7, 170, Gurney and Jackson, London, 1949.
- 46 REICHSTEIN, T., and SHOPPEE, C. W., *Faraday Soc. Disc., Chromatography*, No. 7, 305., Gurney and Jackson, London, 1949.
- 47 SMIT, W. M., *Faraday Soc. Disc., Chromatography*, No. 7, 248, Gurney and Jackson, London, 1949.
- 48 STEWART, A., *Faraday Soc. Disc., Chromatography* No. 7, 65, Gurney and Jackson, London, 1949.
- 49 HENDERSON, G. M., and Rule, H. G., *Nature*, **141**, 917, 1938; *J. Chem. Soc.*, **1939**, 1568.
- 50 BROCKMAN, H., *Faraday Soc. Disc., Chromatography* No. 7, 58, Gurney and Jackson, London, 1949.

- 51 ROBINSON, G., *Faraday Soc. Disc., Chromatography* No. 7, 195, Gurney and Jackson, London, 1949.
- 52 TISELIUS, A., *Advances in Colloid Science*, Vol. I., 81, Interscience Publishers, New York, 1942.
- 53 TISELIUS, A., *Advances in Protein Chemistry*, Vol. III, 67, Academic Press, New York, 1947.
- 54 CLAESON, S., *Arkiv. Kem. Mineral. Geol.*, **23A**, No. I, 1946.
- 55 SHEPARD, C. C., and Tiselius, A., *Faraday Soc. Disc., Chromatography* No. 7, 275, Gurney and Jackson, London, 1949.
- 56 HAMILTON, J. C., and HOLMAN, R. T., *Archiv. Biochem. and Biophys.*, **36**, 456, 1952.
- 57 LEVI, A. A., *Faraday Soc. Disc., Chromatography*, No. 7, 125, Gurney and Jackson, London, 1949.
- 58 GORDON, A. H., MARTIN, A. J. P., and SYNGE, R. M. L., *Biochem. J.*, **37**, 79, 1943.
- 59 LIDDELL, H. F., and RYDON, H. N., *Biochem. J.*, **38**, 68, 1944.
- 60 ISHERWOOD, F. A., *Biochem. J.*, **40**, 688, 1946.
- 61 TRISTRAM, G. R., *Biochem. J.*, **40**, 721, 1946.
- 62 MARTIN, A. J. P., *Symposia Bioch. Soc.*, No. 3, 11, 1949.
- 63 SANGER, F., *Biochem. J.*, **39**, 507, 1945.
- 64 PERRONE, J. C., *Nature*, **167**, 513, 1951.
- 65 MIDDLEBROOK, W. R., *Nature*, **164**, 501, 1949.
- 66 BLACKBURN, S., *Biochem. J.*, **45**, 579, 1949.
- 67 BISERTE, G., and OSTEUX, G. R., *Bull. Soc. Chim. biologique*, **XXXIII**, 50, 1951.
- 68 BELL, D. J., *J., Chem. Soc.*, **1944**, 473.
- 69 BULEN, W. A., VARNER, J. E., and BURRELL, R. C., *Anal. Chem.*, **24**, 187, 1952.
- 70 DONALDSON, K. O., TULANE, V. J., and MARSHALL, L. M., *Anal. Chem.*, **24**, 185, 1952.
- 71 MONTGOMERY, R., *J. Amer. Chem. Soc.*, **74**, 1466, 1952.
- 72 LEIGH, T., *Faraday Soc. Disc., Chromatography* No. 7, 311 Gurney and Jackson, London, 1949.
- 73 BURSTALL, F. H., DAVIES, G. R., and WELLS, R. A., *Faraday Soc. Disc., Chromatography* No. 7, 179, Gurney and Jackson, London, 1949.
- 74 BURSTALL, F. H., and WELLS, R. A., *Analyst.*, **76**, 396, 1951.
- 75 ELSDEN, S. R., *Symposia Bioch. Soc.* No. 3, 74, 1949.
- 76 MOYLE, V., BALDWIN, E., and SCARISBRICK, R., *Biochem. J.*, **43**, 308, 1948.
- 77 PETERSON, M. H., and JOHNSON, M. J., *J. Biol. Chem.*, **174**, 775, 1948.
- 78 RAMSEY, L. L., and PATTERSON, W. I., *J. Assoc. Offl. Agric. Chem.*, **31**, 441, 1948.

- 79 RAMSEY, L. L., and PATTERSON, W. I., *J. Assoc. Offl. Agric. Chem.*, **31**, 139, 1948.
- 80 HOWARD, G. A., and MARTIN, A. J. P., *Biochem. J.*, **46**, 532 1950.
- 81 BOLDINGH, J., *Experientia*, **IV**, 270, 1948.
- 82 JAMES, A. T., and MARTIN, A. J. P., *Biochem. J.*, **50**, 679, 1952.
- 83 JAMES, A. T., MARTIN, A. J. P., and HOWARD SMITH, G., *Biochem. J.*, **52**, 238, 1952.
- 84 STEIN, W. H., and MOORE, S., *J. Biol. Chem.*, **178**, 79, 1949.
- 85 CRAIG, L. C., and POST, O., *Anal. Chem.*, **21**, 500, 1949.
- 86 CRAIG, L. C., HAUSMANN, W., AHRENS, E. H., and HARFENIST, E. J., *Anal. Chem.*, **23**, 1236, 1951.
- 87 SPEDDING, F. H., *Faraday Soc. Disc., Chromatography* No. 7, 214, Gurney and Jackson, London, 1949.
- 88 BENDALL, J. R., PARTRIDGE, S. M., and WESTALL, R. G., *Nature*, **160**, 374, 1947.
- 89 BOYD, G. E., SCHUBERT, J. E., and ADAMSON, A. W., *J. Amer. Chem. Soc.*, **69**, 2818, 1947.
- 90 COHN, W. E., and KOHN, H. W., *J. Amer. Chem. Soc.*, **70**, 1986, 1948.
- 91 MAYER, S. W., and TOMPKINS, E. R., *J. Amer. Chem. Soc.*, **69**, 2866, 1947.
- 92 PARTRIDGE, S. M., and BRIMLEY, R. C., *Biochem. J.*, **51**, 628, 1952.
- 93 PARTRIDGE, S. M., *Biochem. J.*, **44**, 521, 1949.
- 94 WESTALL, R. G., *Jl. Science of Food and Agric.*, **1**, 191, 1950.
- 95 SHEWAN, J. M., FLETCHER, L. I., PARTRIDGE, S. M., and BRIMLEY, R. C. *Jl. Science of Food and Agric.*, **3**, 394, 1952.
- 96 PARTRIDGE, S. M., and WESTALL, R. G., *Biochem. J.*, **44**, 418, 1949.
- 97 MOORE, S., and STEIN, W. H., *J. Biol. Chem.*, **192**, 663, 1951.
- 98 SWEET, R. C., RIEMAN, W., III., and BEUKENKAMP, J., *Anal. Chem.*, **24**, 952, 1952.
- 99 BUSCH, H., HURLBERT, R. B., and POTTER, V. R., *J., Biol. Chem.*, **196**, 717, 1952.
- 100 THOMAS, E. D., HERSHEY, F. B., ABBATE, A. M., and LOOFBOUROW, J. R., *J. Biol. Chem.*, **196**, 575, 1952.
- 101 HIRS, C. H. W., STEIN, W. H., and MOORE, S., *J. Amer. Chem. Soc.*, **73**, 1893, 1951.
- 102 BOARDMAN, N. K., and PARTRIDGE, S. M., *Nature*, **171**, 208, 1953.
- 103 Hale, D. K., and REICHENBERG, D., *Faraday Soc. Disc. Chromatography*, No. 7, 79, Gurney and Jackson, London, 1949.

- 104 STEIN, W. H., and MOORE, S., *J. Biol. Chem.*, **176**, 337, 1948.
- 105 PHILLIPS, D. M. P., *Nature*, **164**, 545, 1949.
- 106 JAMES, A. T., MARTIN, A. J. P., and RANDALL, S. S., *Biochem. J.*, **49**, 293, 1951.
- 107 BRIMLEY, R. C., and SNOW, A., *J. Scient. Instr.*, **26**, 73, 1949.
- 108 LASKOWSKI, D. E., and PUTSCHER, R. E., *Anal. Chem.*, **24**, 965, 1952.
- 109 CONSDEN, R., GORDON, A. H., and MARTIN, A. J. P., *Biochem. J.*, **41**, 590, 1947.
- 110 STEIN, W. H., and MOORE, S., *J. Biol. Chem.*, **190**, 103, 1951.
- 111 ALM, R. S., WILLIAMS, R. J. P., and TISELIUS, A., *Acta Chemica Scand.*, **6**, 826 1952.
- 112 JAMES, A. T., *Biochem. J.*, **52**, 242, 1952.

अनुक्रमणिका

- Adsorbents; अधिशोषक, ६० activation; सक्रिय बनाना, ६०
- Adsorption chromatography (देखिये Column Chromatography)
- अधिशोषण क्रोमैटोग्राफी; १४, ५०
- of gases and vapours; गैसों और वाष्पों की, ६८
- solvents for; के लिए विलायक ५९, ६०
- substances separable; पृथक् हो सकनेवाले पदार्थ ५९
- Alumina, as absorbent, activity; एल्यूमिना, अधिशोषक की भाँति, सक्रियता, ६०
- Amino acids, acetylated, partition chromatography;
- अमीनो-अम्ल, ऐसीटिलयुक्त, विभाजन-क्रोमैटोग्राफी, ७५, ९७
- chromatography; क्रोमैटोग्राफी, ४४
- colours produced with ninhydrin; निनहाइड्रिन द्वारा बने रंग, २४
- D.N.P. derivatives; डा० ना० फि० व्युत्पन्न, ८०, ८१
- in peptide, chromatographic analysis; पेप्टाइड में, क्रोमैटोग्राफीय विश्लेषण, १२
- partition Chromatography; विभाजन क्रोमैटोग्राफी,—
- R_F Values; सा अ मान, १५६
- separation by elution method; निष्कासन विधि द्वारा पृथक्करण, १२४
- sequential paper Chromatograms क्रमिक कागज क्रोमैटोग्राम, ११९
- solvents for; के लिए विलायक, ३२
- Ammonia, and methylamines, separation by gas-liquid chromatogram; अमोनिया और मेथिल अमीन, गैस-द्रव क्रोमैटोग्राम द्वारा पृथक्करण, ९३
- Apparatus, accessory; उपकरण, सहायक, १३१
- Beetroot juice, fractionation, sequential paper chromatograms; चुकन्दर रस, प्रभाजन, क्रमिक कागज क्रोमैटोग्राम, १२२

Chromatography (देखिए Specific methods भी) १

methods; विधियाँ, १३

theory; सिद्धांत, १९

Colour density, measurement; रंग-घनत्व, माप, ३९

Column chromatography, adsorption; स्तम्भ क्रोमैटोग्राफी, अधिशोषण, ५०

application of list liquid; परख-द्रव का लगाना, ५७

characterisation of fractions; अंशों का लक्षण-निर्धारण, ११६

clearing of Solutions; विलयनों का साफ करना, ११०

concentration of displacing solution; विस्थापी विलयन का सांद्रण, १०८

containers for adsorbent; अधिशोषक के लिए पात्र, ५३

development of chromatogram; क्रोमैटोग्राम का प्रस्फुटन, ५७

ion exchange; आयन-विनिमय, १००

multiple Columns; अनेक स्तम्भ, १०६, ११२

packing of column; स्तम्भ का भरना ५४

partition; विभाजन, ७३

preparation of columns; स्तम्भों की तैयारी, १०२

size of samples; नमूनों की मात्रा, १०७

Conductivity (देखिए ‡ Electrical Conductivity)

Counter-current distribution; प्रवाह-विरोधी वितरण, ९८

De-salting apparatus; लवणरहित करनेवाला उपकरण, १४६

Diatomaceous earth, for partition columns; जलज उद्भिज्ज युक्त मिट्टी, विभाजन-स्तम्भों के लिए, ७९

Displacement Chromatography; विस्थापन-क्रोमैटोग्राफी, १७, ६३

by adsorption; अधिशोषण द्वारा ६६

Drop Counting, in fraction Collecting; बूंदों का गिनना, अंश एकत्र करते समय, १३१

Electrical conductivity, measurement; वैद्युत चालकता माप, १४४

Elution; निष्कासन, १९, ४२

apparatus; उपकरण, ४३

- using ion-exchange resins; आयन-विनिमय रेजिनों का उपयोग करके, १२५
- Fatty acids, partition Chromatography; वसीय अम्ल, विभाजन क्रोमैटोग्राफी, ८६
- R_F values; सा अ मान, १५५
- Fraction collectors; अंश एकत्रक, ११५
- by weight; भार द्वारा, १३३
- drop-counting; बूंदों का गिनना, १३१
- time-based; समय आधारित, १४२
- Frontal analysis; अग्रभागीय विश्लेषण, १६, ६३, ६५
- Gases, absorption Chromatography; गैस, अवशोषण क्रोमैटोग्राफी, ६८
- Haddock muscle juice, fractionation, sequential paper chromatograms; हैडक-मासपेशी का रस, प्रभाजन, क्रमिक-काराज-क्रोमैटोग्राम, १२३
- Ion-exchange resins (देखिए) Column Chromatography) १७
- absorbent properties; अधिशोषक गुण-धर्म, १२७
- adsorption curves; अवशोषण-वक्र, १२८
- elution methods using; निष्कासन विधियों का उपयोग करके, १२५
- obtainable in Great Britain; ग्रेट ब्रिटेन में प्राप्य, १२९
- Keto-acids, R_F values; कीटो-अम्ल, सा अ मान, १५६
- Kieselguhr, for partition columns; कीसेलगुहर, विभाजन-स्तम्भों के लिए, ७९, ८९
- packing; भरना,—.
- Martin and Synge, partition chromatography experiments; मार्टिन एवं सिन्ज, विभाजन-क्रोमैटोग्राफी के प्रयोग, ७३
- Metals, partition Chromatography; धातु, विभाजन क्रोमैटोग्राफी, ८५
- R_F values; सा अ मान, १५०
- Methylamines, separation by gas-liquid chromatogram; मेथिल अमीनो, गैस-द्रव क्रोमैटोग्राम द्वारा पृथक्करण, ९३
- Micro-burette; सूक्ष्म-ब्यूरेट, ९६

Micro-pipette; सूक्ष्म-पिपेट, ४१

Ninhydrin; as reagent; निनहाइड्रिन; प्रतिकर्मक की भाँति, २३, २४

Organic acids, from plants, separation; कार्बनिक अम्ल, पौधों से, पृथक्करण, ८३

Papers (देखिए, Paper Chromatography भी)

handling of large sheets; बड़े तावों का सम्हालना, २७

impurities in; में अपद्रव्य, ३०

properties of different types; विविध प्रकारों के गुणधर्म, २९

washing, apparatus; धोनेवाला, उपकरण, ३१

Paper Chromatography; कागज-क्रोमैटोग्राफी, ९, २१, ३६

apparatus, original; मूल उपकरण, २२

applications; उपयोग, ४४

capillary ascent; केशनली-चढ़ाव, २६

chromatogram photographs, facing; क्रोमैटोग्राम की फोटो, ३६

drying of chromatograms; क्रोमैटोग्रामों का सुखाना, ३५

two dimensional; द्वि-आयामी, ११, २७

using special Scanning devices; विशेष निरूपित करनेवाली युक्तियों के उपयोग से, ४७

variants; उपकरण में परिवर्तन २५

Partition Chromatography विभाजन-क्रोमैटोग्राफी, ३

applications; उपयोग, ८०

factors affecting असर डालने वाली दशाएँ, १३

gas-liquid method; गैस-द्रव विधि, ८७

modified; परिवर्धित, ८५

theory; सिद्धांत, ७६

Penicillin compounds, chromatography; पेनीसिलीन यौगिक, क्रोमैटोग्राफी, ४७

Peptide, amino acids in, chromatographic analysis; पेप्टाइड, में प्रोटीन-अम्ल, क्रोमैटोग्राफीय विश्लेषण, १२

p^H , measurement; हा अ सां, माप, १४४

Phenols, R_F values; फीनोल, सा अ मान, १५९

Phosphoric esters, paper chromatography; फास्फोरिक एस्टर,
कागज-क्रोमैटोग्राफी, १६०

pK values; pK मान ११७

Proteins, amino-end groups, determination, प्रोटीन, अंत के
अमीनो समूह, निर्धारण, ८०

chromatographic separation; क्रोमैटोग्राफ़ीय पृथक्करण, १२७

R values; सा मान, ५८, ८१

R_F values; सा अ मान, ११, २४, ३६, ८२

relation to chemical structure; रासायनिक रचना से संबंध ४८

RM values; सा ग मान, ४९

Radio-activity, on paper chromatograms; रेडियम-धर्मिता,
कागज-क्रोमैटोग्रामों पर, ४७

Raffinose, in raw Sugar, chromatography; रैफ़ीनोज़, कच्ची शर्करा
में, क्रोमैटोग्राफी, ४६

Scanning devices; विशेष निरूपित करनेवाली युक्तियां, ४७

Sequential chromatograms; क्रमिक क्रोमैटोग्राम, ४८, १२०

Silica gel, for partition columns, preparation; सिलिका श्लिषि,
विभाजन-स्तम्भों के लिए, तैयारी, ७५, ७७

Solvents; विलायक, १५०

for absorption chromatography; अवशोषण क्रोमैटोग्राफी के
लिए, ५२, ६०

for paper chromatography; कागज क्रोमैटोग्राफी के लिए, ३६

Spots, area, measurement; धब्बे, क्षेत्रफल, माप, ३८

colour density, measurement; रंग-घनत्व, माप, ३९

- eluted, microchemical determinations; निष्कासित, सूक्ष्म-रासायनिक निर्धारण, ४२
- excised, microchemical determinations; कर्तित, सूक्ष्म-रासायनिक निर्धारण, ४०
- streaking; लकीर डालते हुए, ३४ परख द्रव लगाने ३३
- waisted; कमर युक्त, ३४
- Sprays; फव्वारे, १५०
- application; उपयोग, ३५, ३६
- Steroids, separation; स्टीरवायड, पृथक्करण,—
- Sugars, elution analysis; शर्कराएँ, निष्कासन-विश्लेषण, ४२
- methyalted, separation; मेथिल युक्त, पृथक्करण, ८२
- R_F values; सा अ मान,—
- raffinose in determination; निर्धारण में रैफ़ीनोज़, ४६
- structure, relation to behaviour on Chromatogram; रचना, क्रोमैटोग्राम में वितरण के साथ संबंध, ४९
- Sugden's parachor, relation to RM value; सुग्डेन का पैराकार, सा ग से संबंध, ४९
- Thermal Conductivity, of gases and Vapours, in absorption chromatography; ऊष्मीय चालकता, गैसों और वाष्पों की, अवशोषण-क्रोमैटोग्राफी में, ६८
- Tiselius, work and its developments; टिज़ेलियस, कार्य और उसका विकास, ६२
- Ultra-violet irradiation for detecting spots; परा-बैंगनी उद्योतन, धब्बों को पहिचानने के लिए, ४७
- Urine, Chromatography, T-spot; पेशाब, क्रोमैटोग्राफी, टी-धब्बा, ४४
- Vapours, absorption Chromatography; वाष्प, अवशोषण, क्रोमैटोग्राफी, ६८
- Xanthophylls, absorption Chromatography; ज़ैथोफिल, अवशोषण—क्रोमैटोग्राफी, ५०, ५१

